



ज्ञान तत्त्व

SEPTEMBER 2026

अंक - 12

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

उपदेश, प्रवचन,
भाषण और शिक्षा [3]



500

उपदेश प्रवचन भाषण
शिक्षा [4]



प्रकाशन की तिथि - 30-09-2026

पोस्ट की तिथि - 15-10-2026

सिंहावलोकन

05 नई समाज व्यवस्था

16 सत्ता द्वारा स्थापित दृष्टिकोण से
बाहर सोचने के लिए क्या हम तैयार
हैं? ज्ञानेन्द्र आर्य

08 मुनि जी की विविध विषयों पर लेख

18 जीवन पथ

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल
9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक

बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल

नरेन्द्र सिंह-9012432074
संजय तिवारी-7753934242
विपुल आदर्श-8425997210

सहयोगी संपादक

ज्ञानेन्द्र आर्य-8318621282

सदस्यता नियमन

संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा

लाल बाबू रवि-7000475949

वितरण एवं मुद्रण सहयोग

रबीन्द्र विश्वास-9630766001

उपदेश, प्रवचन, भाषण और शिक्षा

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

दुनिया में कोई भी दो व्यक्ति पूरी तरह एक समान नहीं होते, उनमें कुछ न कुछ अंतर अवश्य होता है। क्योंकि दुनिया में कोई भी व्यक्ति न पूर्ण ज्ञानी होता है न ही पूर्ण रूप से ज्ञान शून्य। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक निरंतर ज्ञान प्राप्त करता रहता है और दूसरों को शिक्षा भी देता रहता है। हर आदमी जीवन भर दाता भी रहता है और ग्रहणकर्ता भी। न कोई व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से ज्ञानी हो सकता है न ही पूरी तरह ज्ञान शून्य। प्रत्येक व्यक्ति हर मामले में दूसरे लोगों से निरंतर प्रतिस्पर्धा करता रहता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्रवृत्ति और क्षमता के आधार पर आकलन करके उसे चार वर्गों में बांटा जाता है जिसे वर्ण कहते हैं। इन वर्गों में भी मार्गदर्शक हमेशा ज्ञान और शिक्षा देता है तथा शेष तीन वर्ण मार्गदर्शक से ज्ञान और शिक्षा ग्रहण करते हैं। उपदेश प्रवचन भाषण और शिक्षा देना मुख्य रूप से मार्गदर्शक का काम माना जाता है जिसे प्राचीन काल में ब्राह्मण कहा जाता था। व्यक्ति की क्षमता का निर्धारण तीन आधारों पर होता है:- 1) जन्मपूर्व के संस्कार 2) पारिवारिक वातावरण 3) सामाजिक परिवेश। इस तरह प्रत्येक बालक को शिक्षा प्रदान करने में परिवार की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है और उनमें भी मां की अधिक। प्रत्येक व्यक्ति में उपदेश, प्रवचन, भाषण और शिक्षा का मिलाजुला समावेश होता है भले ही वह किसी भी वर्ण का हो। इसके बाद भी मार्गदर्शक वर्ण के लोगों में यह क्षमता कुछ विशेष होती है। ये चारों क्षमतायें एक दूसरे से इतनी मिली हुई होती हैं कि चारों को अलग अलग करना बहुत कठिन कार्य है फिर भी मैं इस कार्य को करने का प्रयास कर रहा हूँ। चारों विषय एक समान दिखते हुए भी चारों में कुछ भिन्नतायें हैं।

उपदेश- अपना अनुभव, मस्तिष्क या बुद्धिग्राह्य भाषा, गुण तथा तर्क प्रधान, तत्त्व, गंभीर, कथनी और करनी की एकरूपता तथा उपदेश के अपने विचार होते हैं। उपदेश का हर वाक्य सत्य होना चाहिये, स्पष्ट होना चाहिये, द्विअर्थी नहीं। उपदेश को हम दूसरे शब्दों में मक्खन भी कह सकते हैं। प्रवचन- अपना अनुभव, बुद्धिग्राह्य भाषा, कलाप्रधान, सुपाच्य, कथनी करनी में एकरूपता, तथा काल्पनिक प्रस्तुति होता है। प्रवचन को हम दूसरे शब्दों में मठा भी कह सकते हैं। भाषण- दूसरों का अनुभव, बुद्धिग्राह्य कलाप्रधान सुपाच्य कथनी करनी में एकरूपता का अभाव, काल्पनिक तथ्य से जुड़ा होता है। सत्य असत्य से कोई मतलब नहीं। यह एक प्रकार से पानी है जिसमें कोई तत्व नहीं होता। शिक्षा- दूसरों के विचार, मस्तिष्कग्राह्य, विचारप्रधान, तथ्यात्मक सत्य, संक्षिप्त स्पष्ट होता है किन्तु शिक्षा देने वाले की कथनी करनी में

एकरूपता आवश्यक नहीं है। इसे हम दूध कह सकते हैं।

इसी तरह उपदेश के प्रवचनकर्ता भाषण देने वाला और शिक्षक की भी कुछ अलग अलग भूमिकाएं होती हैं, भले ही चारों का काम ब्राह्मण प्रधान क्यों न हो। उपदेश के की यह विशेषता होती है कि वह उपदेश देते समय हाथ नहीं हिलाता न ही श्रोताओं की प्रतिक्रिया की अपेक्षा करता है। उसके चेहरे में उतार चढ़ाव नहीं होता। निर्लिप्त भाव से विचार प्रकट करता है। अपने विचारों की स्थापना के लिए अन्य महापुरुषों का नाम नहीं जोड़ता और प्रायः उपदेश के का अपना मौलिक चिंतन होता है। उपदेश के समय श्रोता आमतौर पर या तो बहुत जल्दी उठ जाते हैं अथवा उन्हें नींद आने लगती है। उपदेश के इस बात से कभी प्रभावित नहीं होता। उपदेश के प्रश्नोत्तर अवश्य करता है और प्रश्नोत्तर से अपनी बात समझाता है। उपदेश के का जीवन स्वाभाविक होता है, कोई बनावट नहीं होती। उसका कोई व्यक्तिगत उद्देश्य भी नहीं होता। प्रवचनकर्ता बिल्कुल भिन्न होता है। वह अपने शरीर के विभिन्न अंगों के माध्यम से श्रोता को प्रभावित करने का प्रयास करता है। वह श्रोताओं की प्रतिक्रिया की भी हमेशा समीक्षा करता रहता है। उसके प्रवचन में विभिन्न रसों का समावेश होता है तथा वह अपनी बात समझाने के लिए काल्पनिक और असत्य उदाहरण सत्य के समान बनाकर प्रस्तुत करता है। वह प्रश्नोत्तर के अवसर नहीं देता। जीवन उसका भी स्वाभाविक ही होता है किन्तु उसके प्रवचन के साथ उसका कुछ व्यक्तिगत उद्देश्य भी जुड़ा होता है। भाषण देने वाला भी अपने पूरे शरीर के विभिन्न अंगों को सक्रिय रखता है तथा प्रतिक्रिया की बहुत चिंता करता है। भाषण देने वाले का अपना चिंतन नहीं होता बल्कि वह अन्य विचारकों के चिंतन को मिलाकर कलात्मक तरीके से प्रस्तुत करता है। वह अपने भाषण में कई प्रकार के रसों का समावेश करता है तथा उसका व्यक्तिगत उद्देश्य भी निहित होता है। वह प्रश्नोत्तर का सहारा नहीं लेता। वह अपनी बात कहता है दूसरों की सुनना नहीं चाहता। उसकी कथनी करनी में आसमान जमीन का फर्क होता है। शिक्षक कुछ और भिन्न होता है। वह हाव भाव से निर्लिप्त होता है प्रतिक्रिया की अपेक्षा नहीं करता। प्रश्नोत्तर के अवसर देता है। अपना ज्ञान नहीं जोड़ता न ही वह अपनी शिक्षा को अपने आचरण से प्रभावित होने देता है। उसका कोई व्यक्तिगत उद्देश्य नहीं होता। इस तरह चारों प्रवृत्तियों में अनेक समानताएं होते हुए भी कुछ असमानताएं होती हैं। चारों में सबसे अधिक सम्मान उपदेश के का होता है तथा सबसे कम भाषण देने वालों का। किन्तु यह बात भी सच है कि उपदेश सुनने के लिए शायद ही दो चार लोग इकट्ठे हों और वे भी यदि

दबाव न हो तो थोड़ी देर में उठ कर चले जाते हैं। यही कारण है की प्रबन्धक उपदेश ग्रहण करने वालों को पूरी तरह अनुशासित सतर्क और सावधान रखने का प्रयास करता है।

यदि हम वर्तमान वातावरण की समीक्षा करें तो वास्तविक और पूर्ण उपदेश क तो आपको मिलेंगे ही नहीं किन्तु आंशिक रूप से गुण रखने वाले उपदेश क भी बहुत कम मिलेंगे क्योंकि न तो योग्य उपदेश क दिखते हैं न ही उपदेश ग्रहण करने वालों की वैसी टीम और क्षमता इसलिए प्रवचनकर्ता ही लगभग उपदेश क मान लिये गये हैं। पुराने जमाने में जब बालक गुरु के आश्रम में जाता था तो गुरु ही अभिभावक उपदेश क और शिक्षककी भूमिका में होता था। अब शिक्षा एक प्रकार का नौकरी हो गई है। शिक्षक के लिए आवश्यक नहीं कि उसका व्यक्तिगत आचरण शिक्षा से जुड़ा हो किन्तु समाज में एक भावना बनी हुई है कि शिक्षक और गुरु एक समान होते हैं। यह भावना ठीक नहीं। वर्तमान समय में एक यह बुराई भी घुसती जा रही है कि पेशेवर लोग समाज को धोखा देने के लिए इसे पूरी तरह व्यवसाय बना लिये हैं। लेकिन इससे बड़ी खतरनाक बुराई यह आ गई है कि अपराधी तत्वों ने इन चारों सम्मानित व्यवसायों में अपना प्रवेशपा लिया है और वे इसका दुरुपयोग कर रहे हैं। इसलिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि इस प्रणाली से आपराधिक तत्वों को बाहर किया जाये। इस संबंध में मेरा एक सुझाव है कि वर्तमान सामाजिक वातावरण में गुरु और शिष्य परम्परा को पूरी तरह छोड़ दिया जाये। जब योग्य गुरु मिलते ही नहीं और धूर्त गुरुओं का प्रवेश बहुत अधिक है तो इस परम्परा को पूरी तरह छोड़ ही देना चाहिए। अनेक धूर्त लोग गुरुगोविंद दोउ खड़े का उदाहरण देकर इस परम्परा का लाभ उठाना चाहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वतः के निर्णय करने की अंतिम स्वतंत्रता अपने पास रखनी चाहिये किसी दूसरे के पास नहीं चाहे वह कितना भी बड़ा उपदेश क हो अथवा कितना भी अच्छा प्रवचनकर्ता। हमें सब की सुनने किन्तु अपना निर्णय स्वयं करने के लिए तैयार रहना चाहिये। हमें यह भी ध्यान देना चाहिये कि ये प्रवृत्तियां जन्म से होने वाले ब्राह्मणों के लिए अनिवार्य नहीं हैं बल्कि योग्यता अनुसार कोई भी इस दिशा में किसी भी सीमा तक आगे बढ़ सकता है। इस संबंध में मेरा यह भी सुझाव है की अब जन्मना वर्ण व्यवस्था को छोड़ कर योग्यता और कर्म के आधार पर वर्ण और जाति मान लेना चाहिए। इसीलिए मैंने ब्राह्मण की जगह मार्गदर्शक लिखा है। मेरा यह भी मानना है की हम गुरुकुल शिक्षा पद्धति को तब यतक प्रोत्साहित करना बंद कर दे जब तक किसी घोषित पद्धति के आधार पर परीक्षा के बाद मार्गदर्शक बनना शुरू न हो जाए क्योंकि जब योग्य गुरु मिलते ही नहीं हैं तो हम नौकरों को गुरु कैसे मान ले। गुरु हमेशा ज्ञान के साथ शिक्षा देता है जबकि शिक्षक के पास ज्ञान होता ही नहीं इसलिए वह

सिर्फ शिक्षा ही देता है। एक प्रश्न और खड़ा होता है की इस अव्यवस्था के लिए अधिक दोषी कौन है, इसके लिए ब्राह्मण अधिक दोषी है या अन्य तीन वर्ण। यह सही है की उपदेशकों को सम्मान मिलना भी बंद हो गया और सुविधा भी बंद हो गयी लेकिन यह कहना कठिन है की इसमें गलती किसकी है। इन दोनों पक्षों में से गलती चाहे जिसकी भी हो लेकिन परिणाम घातक हुआ और अब गलती खोजने की अपेक्षा नए तरीके से समाधान की जरूरत है। उपदेश और प्रवचन व्यक्ति के चरित्र निर्माण में सहायक होते हैं।

उपदेश और शिक्षा व्यक्ति की तर्क शक्ति जाग्रत करते हैं। भाषण और शिक्षा व्यक्ति की क्षमता बढ़ाते हैं किन्तु चरित्र निर्माण नहीं करते।

प्रवचन व्यक्ति को संस्कारित करते हैं। विचार शक्ति पर खराब प्रभाव डालते हैं। इन सबमें उपदेश देना और सुनना सबसे ज्यादा कठिन कार्य है किन्तु सबसे ज्यादा उपयोगी है। भाषण देना और सुनना सबसे आसान है किन्तु सबसे कम उपयोगी है। माता पिता पहले गुरु होते हैं। उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि उन्हें बचपन में ही अनुभव हो जाये कि उनका बालक प्रतिभाशाली है तो उसे प्रवचन और भाषण से बचाकर उपदेश और शिक्षा से जोड़ना चाहिये जिससे वह संस्कारित होने से बचे। उसे ऐसे संगठन और संस्थाओं से बचाना चाहिये जो बालको में संस्कारों का विस्तार करते हैं। क्योंकि संस्कार ही तर्क शक्ति के विस्तार में घातक होता है लेकिन यदि बचपन से व्यक्ति की तर्क शक्ति का आकलन नकारात्मक हो तब उसे संस्कारित ही करना चाहिए। इस तरह मार्गदर्शक को तर्क प्रधान और अन्य तीन रक्षक पालक सेवक को संस्कार प्रधान होना चाहिए।

उपदेश प्रवचन भाषण शिक्षा

उपदेश पूरी तरह सत्य, तत्त्व, कथनी और करनी की एकरूपता, मस्तिष्क ग्राह्य, विचार प्रधान तथा अपने स्वतः के ज्ञान से ओत-प्रोत होता है। आप जिन्हें उपदेश क कहते हैं वे या तो प्रवचन कर्ता हैं या शिक्षा देने वाले। उपदेश देना बहुत कठिन कार्य है और उपदेश सुनना तो और भी कठिन है क्योंकि न उपदेश का कोई प्रभाव पड़ता हुआ दिखता है न श्रोता को मजा आता है। यही कारण है कि उपदेश की लाइन में बिरले ही निकल पाते हैं। उपदेश क अपने आचरण में भी असत्य का सहारा नहीं ले सकता न ही अपने प्रवचन में असत्य बोल पाता है। प्रवचन बंधन रहित, हृदय ग्राह्य, कला प्रधान, शिक्षा से ओत-प्रोत तथा कथनी करनी की एकरूपता का होता है। एक व्यक्ति भूख से छटपटा रहा है। एक दूसरा व्यक्ति उसे दो रोटी देकर उससे दिनभर काम करा रहा है। और आप उसे रोटी का एक टुकड़ा देने की अपेक्षा बाहर बैठकर प्रवचन दे रहे हैं।

यह किसी भी स्थिति में न्यायसंगत नहीं है। लेकिन वर्तमान समय में ऐसे ही लोगों की समाज में बाढ़ आई हुई है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है। मेरा एक सुझाव है कि वर्तमान सामाजिक वातावरण में गुरु और शिष्य परम्परा को पूरी तरह छोड़ दिया जाये। जब योग्य गुरु मिलते ही नहीं और धूर्त गुरुओं का प्रवेश बहुत अधिक है तो इस परम्परा को पूरी तरह छोड़ ही देना चाहिए।

उपदेश और प्रवचन व्यक्ति के चरित्र निर्माण में सहायक होते हैं।

उपदेश और शिक्षा व्यक्ति की तर्क शक्ति जाग्रत करते हैं। भाषण और शिक्षा व्यक्ति की क्षमता बढ़ाते हैं किन्तु चरित्र निर्माण नहीं करते।

प्रवचन व्यक्ति को संस्कारित करते हैं। विचार शक्ति पर खराब प्रभाव डालते हैं।

भावना, बुद्धि, विवेक, उपदेश, प्रवचन, भाषण, शिक्षा

1. मनुष्य के कार्यों में भावना और बुद्धि का समन्वय अनिवार्य है। भावना त्याग का प्रतीक है और बुद्धि संग्रह का। भावना की प्रधानता संतुलित निर्णय में बाधक है। भावना प्रधान व्यक्ति संतुलित निर्णय कर ही नहीं सकता। अच्छी भावनाएँ व्यक्ति को सरीफ़ बनाती है। बुद्धि चालाक और विवेक व्यक्ति को समझदार बनाता है।

2. स्वार्थी तत्व लगातार समाज में भावनाओं का विस्तार चाहते हैं क्योंकि विवेक उनके स्वार्थ में बाधक होता है। धर्म, जाति, भाषा, राष्ट्र, लिंग, उम्र, आदि भावनात्मक मुद्दे इनके हथियार होते हैं। अधिकांश सामाजिक या धार्मिक संस्थाएँ भावना विस्तार में निरन्तर लगी हुई हैं।

3. शराफत धूर्तों का भोजन है। धूर्तता शराफत के ही कंधों पर सवार होकर आगे बढ़ती है। शराफत का अर्थ होता है अपने कर्तव्य की चिन्ता, अधिकार की नहीं। समझदारी का अर्थ होता है अपने कर्तव्य और अधिकारों की समान चिन्ता। धूर्तता का अर्थ है अधिकारों की चिन्ता, कर्तव्य की नहीं। जब समाज व्यवस्था विश्वसनीय हो तब शराफत उचित है। जब समाज व्यवस्था विश्वसनीय न हो तब शराफत धूर्तता की पूरक है। वर्तमान समय में शराफत छोड़कर समझदारी की दिशा उचित है। ज्ञान यज्ञ शराफत और चालाकी के बीच समझदारी और विवेक के विस्तार का सबसे अच्छा माध्यम है।

4. उपदेश, गूढ़, तात्त्विक, कथनी और चरित्र की एकरूपता, मस्तिष्क ग्राह्य तथा अपने विचार होते हैं। प्रवचन कलात्मक, कथनी और चरित्र की एकरूपता, हृदय ग्राह्य तथा अपने विचार प्रधान होते हैं। भाषण कलात्मक, हृदय ग्राह्य तथा अपने विचार प्रधान होते हैं किन्तु चरित्र आवश्यक नहीं। शिक्षा तत्व और कला का समन्वय, हृदय और मस्तिष्क दोनों का समन्वय होता है किन्तु चरित्र और अपने विचार आवश्यक नहीं।

5. सरीफ़ आदमी निरभिमानी होता है। समझदार आदमी स्वाभिमानी होता है। धूर्त प्रत्यक्ष रूप में निरभिमानी और परोक्ष रूप में अभिमानी होता है।

6. जब तर्क से कोई बात सिद्ध नहीं हो पाती तब भावनात्मक नारे या प्रचार का सहारा लिया जाता है। जब कोई व्यक्ति तर्क से अपनी बात नहीं समझा पाता तब अपने कथन के साथ किसी महापुरुष का नाम जोड़ देता है। वर्तमान समय में तो कई लोग ऐसे मिल जाएंगे जो असत्य बातों में भी महापुरुषों का नाम जोड़ देते हैं।

नई समाज व्यवस्था

1 राज्य और समाज के बीच बिगड़ता संतुलन

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में राज्य और समाज का संतुलन बिगड़ गया है। राज्य ने पूरी तरह समाज व्यवस्था पर अपना एकाधिकार कर लिया है और उस एकाधिकार के दुष्परिणाम भी दिख रहे हैं। इस समस्या के समाधान के लिए हम सब लोग निरन्तर चिंतन कर रहे हैं और उसका मार्ग निकाल रहे हैं। इस मार्ग के रूप में हम दो महीने पहले अयोध्या में उत्तर प्रदेश के प्रमुख लोग बैठे थे और अब आगामी 26 और 27 सितंबर को राँची में झारखंड, बंगाल, बिहार और उड़ीसा के लोग बैठेंगे। हम कोई नई समाज व्यवस्था नहीं बना रहे हैं, लेकिन राज्य और समाज के बीच जो असंतुलन पैदा हो गया है, वह असंतुलन दूर होना चाहिए। समाज और राज्य को मिलकर एक साथ कार्य करना चाहिए, न कि राज्य समाज का मालिक हो

और समाज गुलाम। वर्तमान समय में राज्य आदेश देता है और समाज उसका पालन करने के लिए बाध्य होता है। यह असंतुलन दूर होना चाहिए। इस असंतुलन को दूर करने के प्रयास ही हम लोगों के संस्थान की एकमात्र उपलब्धि होगी। राँची कार्यक्रम संपन्न होने के बाद फिर आगे की योजना पर विचार किया जाएगा, लेकिन हम इस बात के लिए दृढ़ संकल्पित हैं कि राज्य और समाज के बीच के असंतुलन को दूर करने में हम पूरे प्रयत्न लगा देंगे। हमारी यह निरन्तर कोशिश होगी कि राज्य का समाज के सामाजिक मामलों में हस्तक्षेप घटे और समाज अधिक से अधिक योग्य और शक्तिशाली हो। यही कारण है कि हम दोनों दिशाओं में एक साथ मिलकर कार्य कर रहे हैं।

2 जातिवाद और आरक्षण से मुक्त समाज व्यवस्था की परिकल्पना

मुंबई में आईआईटी के एक दलित छात्र ने आत्महत्या कर ली। आत्महत्या करने वाला ही अपराधी था, शिक्षक नहीं। इस मामले को अनावश्यक तूल दिया जा रहा है। यह बात सारी दुनिया समझ रही है। यह मामला शुद्ध राजनीतिक है। न तो यह कोई सामाजिक मामला है, न कोई आपराधिक मामला है। यह मामला तो सिर्फ आत्महत्या का मामला है। आत्महत्या को इतना अधिक महत्वपूर्ण बनाने में राजनीतिक दलों की अधिक भूमिका है, मीडिया की अधिक भूमिका है, पैसा कमाने वाले माता-पिता की अधिक भूमिका है। जिस तरह रोहित व मुला के मामले में उसके परिवार को करोड़ों रुपए मिल गए थे, उसी तरह का धन कमाने का एक मामला है, क्योंकि आत्महत्या कोई अपराध नहीं होता है। हम इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि यह कोई सामाजिक मामला नहीं है। अंबेडकरवादियों, कम्युनिस्टों और मीडिया वालों ने मिलकर इस मामले को तूल दिया है। हम नई प्रस्तावित समाज व्यवस्था में न आत्महत्या को महत्वपूर्ण मानेंगे, न किसी जातिवाद को मानेंगे, न आरक्षण को मानेंगे। हम यह सब राजनीतिक दल-दल से मुक्त समाज व्यवस्था के पक्षधर हैं। हम अंबेडकरवादियों की इस खुली ब्लैकमेलिंग का खुला विरोध करते हैं।

3 परिवार व्यवस्था: समाज की रीढ़ और उसकी मजबूती का आधार

मेरा ऐसा मानना रहा है कि परिवार व्यवस्था पूरे समाज व्यवस्था की नींव है। उसे हम रीढ़ भी कह सकते हैं। यदि परिवार व्यवस्था कमजोर होगी, विकृत होगी, तो हमारा पूरा सामाजिक ढाँचा प्रभावित हो सकता है। इसलिए हमें परिवार व्यवस्था को सशक्त बनाने के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए। मेरा यह मानना है कि पारंपरिक परिवार व्यवस्था में धीरे-धीरे कमजोरी आ रही है और उन कमजोरियों को बदलने के लिए हमें लोकतांत्रिक परिवार व्यवस्था की दिशा में सोचना चाहिए। मेरे एक अभिन्न मित्र मनोज द्विवेदी ने पारंपरिक परिवार व्यवस्था को ही अधिक उपयुक्त माना है। लेकिन मैं उनसे सहमत नहीं हूँ, क्योंकि पारंपरिक परिवार व्यवस्था लगातार कमजोर होती जा रही है और लंबे समय तक आप उसे लागू नहीं रख सकते। परिवार में महिलाओं और बच्चों को पुरानी व्यवस्था के समान मानकर नहीं चला जा सकता। मैं मानता हूँ कि अभी भी अनेक पारंपरिक परिवार सफलतापूर्वक चल रहे हैं, लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसे परिवारों की संख्या लगातार कम होती जा रही है। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि हर परिवार का एक संविधान अवश्य होना चाहिए। वह संविधान परिवार के सारे लोग मिलकर बनाएँ और वह संविधान लिखित हो, सुरक्षित हो। आप पारंपरिक परिवार व्यवस्था को भी अपने संविधान में जोड़ सकते हैं, लेकिन उस लिखित संविधान के अनुसार ही परिवार के सभी

सदस्य चलने के लिए बाध्य हों। सिर्फ यदि आपने इतना बदलाव कर दिया कि एक संविधान बना लिया और सबने बैठकर सहमति से बना लिया, तो परिवार पारंपरिक स्वरूप से हटकर संगठनात्मक इकाई बन जाएगा।

4 सस्ता न्याय नहीं, शीघ्र और प्रभावी न्याय होना चाहिए

समाज में चालाक लोगों ने मिलकर कई गलत धारणाएँ प्रचारित कर दी हैं। इसी तरह की एक धारणा न्याय सस्ता और सुलभ होना चाहिए, यह भी है। एक धारणा ऐसी भी है कि शिक्षा और स्वास्थ्य मुफ्त होना चाहिए। मैं इसके खिलाफ हूँ। न्याय सस्ता और सुलभ नहीं, बल्कि न्याय शीघ्र और प्रभाव उत्पादक होना चाहिए। न्याय सस्ता होने के कारण ही न्याय के साथ लगातार खिलवाड़ हो रहा है। पेशेवर अपराधी न्याय के नाम पर सामान्य लोगों को ब्लैकमेल करते हैं। न्यायालय ब्लैकमेल का हथियार बन गया है। जिन्हें सस्ता न्याय चाहिए और तत्काल भी चाहिए, वे पंचायत के पास जा सकते हैं। पंचायत न्याय नहीं करती, फैसला कर देती है, लेकिन यदि आप न्यायालय में जाएँगे और आप गलत हैं, तो आपको वहाँ जाना बहुत महँगा पड़ना चाहिए। मैं महँगे और शीघ्र न्याय का पक्षधर हूँ। गाय की रोटी कुत्ता खाए और रोकने पर गुर्राए, यह उचित नहीं है।

5 बदलते समय में परिवार व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता

मैं इस बात से पूरी तरह आश्चस्त हूँ कि परंपरागत परिवार व्यवस्था में संपत्ति और स्वतंत्रता एक बहुत बड़ी बुराई है। इसका यदि समाधान नहीं किया गया, तो परिवार व्यवस्था ही समाप्त हो जाएगी। आपने अभी-अभी सुना होगा कि कुछ दिन पहले एक अरबपति व्यापारी मिनोचा को उसके बेटे ने संपत्ति के लालच में मरवा दिया, क्योंकि उस बेटे को डर था कि पिता कहीं संपत्ति किसी और को न दे दे। कानपुर के मिनोचा परिवार का जो परिणाम हुआ है, वह परंपरागत परिवार व्यवस्था वालों को आँख खोलने के लिए पर्याप्त है। बेटे ने अपने पिता की हत्या भी करवाई और अपनी पत्नी पर सारा आरोप भी डाल दिया। आप सोचिए कि संपत्ति के लिए पति-पत्नी, पिता और बेटा किस सीमा तक जा सकते हैं। मिनोचा परिवार का मामला परंपरागत परिवार व्यवस्था के पक्षधर लोगों के सामने एक साफ-साफ उदाहरण है। यह कोई अकेला उदाहरण नहीं है। अभी एक-दो वर्ष पहले ही हम सिंधानिया परिवार का भी हाल देख चुके हैं। इसलिए मेरा आपसे निवेदन है कि देशकाल-स्थिति के बदलाव को गंभीरता से सोचिए। आँख बंद करके परंपराओं पर टिके रहना भविष्य के लिए बड़ा खतरा है। आइए, हम आप मिल-बैठकर इस समस्या का समाधान खोजें। संपत्ति और स्वतंत्रता को संयुक्त करें, व्यक्तिगत

अधिकार नहीं। सिर्फ यही बदलाव सारी समस्याओं का समाधान हो सकता है।

6 नई समाज व्यवस्था में विवाह की स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व

हम नई समाज व्यवस्था में बाल विवाह को मान्यता देने का प्रस्ताव दे रहे हैं। हमारा यह मानना है कि वर्तमान परिस्थितियों में बाल विवाह की पूरी अनुमति दी जानी चाहिए। 12 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में यदि विवाह होता है, तो इसकी स्वीकृति सर्वोच्च समाज व्यवस्था दे सकती है। यदि 14 वर्ष की उम्र में विवाह होता है, तो इसकी स्वीकृति ग्राम सभा दे सकती है। यदि 16 वर्ष की उम्र तक विवाह होता है, तो उसकी स्वीकृति परिवार दे सकता है और 16 वर्ष से अधिक उम्र के बच्चे आपसी सहमति से विवाह कर सकते हैं, चाहे परिवार और समाज की स्वीकृति हो या न हो। हम इस बात पर बहस नहीं कर रहे हैं कि इससे पहले बाल विवाह पर प्रतिबंध गलत था या सही, लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में सैद्धांतिक रूप से भी बाल विवाह उचित है और व्यावहारिक धरातल पर भी। विवाह के मामले में सरकार को तो कोई कानून बनाना ही नहीं चाहिए। यदि दो माता-पिता मिलकर बिल्कुल बच्चों में ही विवाह तय कर देते हैं, तो उसके लिए सरकार को क्यों आपत्ति होनी चाहिए? इसके लिए समाज ही निर्णय कर सकता है। इस तरह सरकार का बोझ कम हो जाएगा, सरकार की गुलामी भी कम हो जाएगी, सामाजिक स्वतंत्रता बहाल हो जाएगी और अनेक तरह के बलात्कार कम हो जाएंगे। वर्तमान परिस्थितियों में सरकारी नौकर और सरकार के एजेंट यदि बाल विवाह पर प्रतिबंध लगाते हैं, तो हमें उस पर कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन जो लोग सरकारी गुलाम नहीं हैं, उनको इस मामले में चुप रहना चाहिए।

7 धर्म, समाज और राज्य की अलग-अलग भूमिकाएँ

समाज की व्यवस्था चलाने में धर्म और राज्य की अलग-अलग भूमिकाएँ होती हैं। राज्य की एक अलग व्यवस्था होती है, समाज की एक अलग व्यवस्था होनी चाहिए और धर्म की कोई व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। दुर्भाग्य से दुनिया में धर्म संगठन का रूप ले रहा है। धर्म अपनी व्यवस्था स्थापित करना चाहता है, जो धर्म का काम नहीं है। यह तो समाज और राज्य का काम है। आजकल धर्म लोगों को अनुशासित कर रहा है। कभी-कभी धर्म लोगों को अपने संगठन से निकाल भी देता है, जबकि इस तरह के लोगों को धर्म का क, ख, ग, घ भी नहीं मालूम है। धर्म तो सिर्फ उपदेश देता है, प्रवचन देता है और हृदय परिवर्तन करता है। इसलिए मैं यह उचित समझता हूँ कि समाज में धर्म, समाज और राज्य—इन तीनों की अलग-

अलग परिभाषा का प्रशिक्षण दिया जाए। धर्म को किसी भी परिस्थिति में संगठन न बनने दिया जाए। यदि कोई संगठन बनता है, तो उसे सामाजिक संगठन कहा जा सकता है, धार्मिक नहीं।

8 धर्म और समाज: समानता के साथ मूलभूत अंतर

धर्म और समाज, ये दोनों कभी-कभी एक सरीखे दिखने लगते हैं, लेकिन दोनों एक साथ जुड़ते हुए भी कई मामलों में अलग-अलग होते हैं, क्योंकि समाज की एक व्यवस्था होती है, समाज का एक संगठन होता है। धर्म की न व्यवस्था होती है, न संगठन होता है। धर्म हमेशा गुण-प्रधान होता है, समाज संगठन-प्रधान। यदि हम पिछले दो-तीन सौ वर्षों का गहराई से आकलन करें, तो स्वामी दयानंद और विवेकानंद धर्मगुरु अधिक थे, समाजशास्त्री कम, जबकि गांधी समाजशास्त्री अधिक थे, धर्मगुरु कम। स्वामी विवेकानंद और दयानंद में भी यदि हम अंतर देखें, तो स्वामी दयानंद ने अपनी धर्म व्यवस्था में आई कमजोरी को दूर करने का प्रयास किया। स्वामी विवेकानंद ने अपने धर्म की अच्छाइयों को दुनिया में फैलाने का प्रयास किया। इस तरह दोनों के मार्गों में कुछ भिन्नता दिखती है। गांधी का मार्ग बिल्कुल अलग था। गांधी समाज व्यवस्था को राज्य व्यवस्था से मुक्त करना चाहते थे। मैं व्यक्तिगत रूप से गांधी विचारों से अधिक निकट हूँ, यद्यपि मैं स्वामी दयानंद और विवेकानंद, उन दोनों की बातों को भी साथ लेकर चलना चाहता हूँ, क्योंकि गांधी भी इन दोनों के मार्ग को साथ लेकर चलते थे। स्वामी दयानंद, विवेकानंद और गांधी, ये सब कहीं-न-कहीं धर्म व्यवस्था और समाज व्यवस्था से जुड़े हुए थे, यद्यपि कुछ मामलों में तीनों के मार्ग अलग-अलग हो सकते हैं। इसी तरह मैं भी सबको साथ लेकर चलना चाहता हूँ, लेकिन मेरा मार्ग गांधी की दिशा में अधिक सक्रिय है, स्वामी दयानंद और विवेकानंद की तुलना में। यही कारण है कि मैं धर्म के मामले में सिर्फ विचार देता हूँ, सक्रियता नहीं दिखाता, लेकिन समाज को राज्य व्यवस्था से मुक्त होना चाहिए, इस मामले में मैं विचार के साथ-साथ सक्रियता भी दिखाता हूँ। इसलिए मैंने उचित समझा कि अपनी बात आपके सामने साफ कर दूँ।

9 राज्य मुक्त व्यवस्था की दिशा में विचार और प्रयास

हम अंतिम रूप से निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि राज्य व्यवस्था न तो हमारी समस्याओं का समाधान कर सकती है और न समाधान करने की उसकी इच्छा है। ऐसी परिस्थितियों में अब हमें राज्य-मुक्त व्यवस्था पर ही विचार करना चाहिए। राज्य अपनी शक्ति को किसी भी परिस्थिति में कम नहीं होने देना चाहता और स्वाभाविक है कि वह चाहेगा भी नहीं, क्योंकि अब तक दुनिया में ऐसे बहुत कम

लोग हुए हैं जिन्होंने शक्ति का स्वेच्छा से त्याग किया हो। फिर भी यह आवश्यक है कि हम राज्य को अपनी शक्ति कम करने के लिए या तो सहमत करें या मजबूर करें। यही सोचकर हम दो अलग-अलग दिशाओं से काम कर रहे हैं। हमारी एक दिशा है कि राज्य के हाथों से संविधान संशोधन के असीम अधिकार वापस लेकर एक अलग संविधान सभा को दे दिए जाएँ। दूसरी तरफ हम यह भी चाहते हैं कि समाज व्यवस्था और अधिक सशक्त हो, आदर्श हो और

समाज राज्य के कमजोर होने का सारा बोझ सँभाल सके। इसलिए हम समाज सशक्तीकरण पर भी जोर दे रहे हैं और समाज सशक्तीकरण की पहली इकाई है परिवार। इस तरह हमें दोनों दिशाओं में एक साथ समान रूप से शक्ति लगानी चाहिए। हम राज्य से संविधान की शक्ति वापस लेना चाहते हैं और समाज से परिवार व्यवस्था को अधिक से अधिक महत्वपूर्ण और सशक्त बनाना चाहते हैं। हमें खुशी है कि हम बहुत अच्छी गति से दोनों दिशाओं में सक्रिय हैं।

मुनि जी के विविध विषयों पर लेख

1 महँगाई का भ्रम और आर्थिक वास्तविकता

हम ऐसा अनुभव कर रहे हैं कि भारत में विदेशों की झूठी मान्यताएँ बहुत तेजी से फैल रही हैं और सत्य के समान स्थापित हो रही हैं। ऐसी ही मान्यताओं में महँगाई शब्द भी एक बहुत बड़ा झूठ है, जो भारत के हर आदमी को सत्य के समान दिखाई दे रहा है। हम लोगों ने रिसर्च किया है और पाया है कि स्वतंत्रता के बाद लगातार भारत में क्रय शक्ति की तुलना में उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य कम होते जा रहे हैं। फिर भी जानबूझकर पूँजीपति और बुद्धिजीवी सरकारों के साथ और मीडिया के साथ मिलकर पूरे समाज में महँगाई का हल्ला कर रहे हैं, जिससे आर्थिक विषमता और श्रम शोषण पर से आम समाज का ध्यान हटाया जा सके। हम अच्छी तरह देख रहे हैं कि लोगों का जीवन स्तर भी सुधर रहा है, क्रय शक्ति भी तेजी से बढ़ रही है, श्रम मूल्य भी बढ़ रहा है। इसके बाद भी उपभोक्ता वस्तुओं को सस्ता रखने के लिए आयात का सहारा लिया जा रहा है। चीन भारत को मनमाना निर्यात कर रहा है और भारत चीन से आयात कर रहा है, क्योंकि भारत उपभोक्ता देश बन गया है और चीन उत्पादक देश बन गया है। हम चाहते हैं कि सत्य समाज के सामने आए, इसलिए नई व्यवस्था में हम महँगाई को प्राथमिकता देंगे। हम देश का उत्पादन बढ़ाएँगे, उपभोग घटाएँगे, निर्यात बढ़ाएँगे, आयात कम करेंगे, आत्मनिर्भर भारत बनाएँगे, भिखारी भारत नहीं। इसलिए हम महँगाई की नीति में आमूल-चूल परिवर्तन करने की योजना रखते हैं।

2 आत्मनिर्भर भारत की दिशा में छत्तीसगढ़ की पहल

हम आत्मनिर्भर भारत की दिशा में सोच रहे हैं। इस संबंध में भारत सरकार भी ठीक दिशा में कार्य कर रही है। इस संबंध में हमारी छत्तीसगढ़ सरकार भी बहुत तेजी से आगे बढ़ रही है। पिछले दो-तीन दिनों में ही छत्तीसगढ़ सरकार ने अनेक कोयला खदानों की मंजूरी दी है। इससे कोयले के मामले में देश आत्मनिर्भरता की दिशा में बढ़ेगा। पिछली सरकारें पर्यावरणवादियों के दबाव में इस प्रकार

की खदानें खोलने से डरती थीं। पिछली सरकारें उद्योगपतियों को भी दूर रखना चाहती थीं, क्योंकि उन्हें सरकारीकरण पर ज्यादा भरोसा था। लेकिन वर्तमान में हमारी सरकार पर्यावरण की भी चिंता नहीं कर रही है और उद्योगपतियों को भी आगे बढ़ा रही है। यही कारण है कि सारी आपत्तियाँ दूर करते हुए हमारी सरकार ने खदानें खोलने की स्वीकृति दी है। हम इस कार्य के लिए छत्तीसगढ़ और भारत सरकार को बधाई देते हैं कि हम आत्मनिर्भर भारत की दिशा में तेजी से बढ़ रहे हैं। हम इस बात के लिए भी बधाई देते हैं कि हमारी छत्तीसगढ़ और भारत सरकार ने पर्यावरण के नाम पर खदानों के विरोध करने वाले विदेशी एजेंटों को किनारे कर दिया है। हम प्रसिद्ध उद्योगपति अदाणी समूह को भी धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने छत्तीसगढ़ की कोयला खदानों में काम करने की स्वीकृति दी है।

3 भारतीय राजनीति में कूटनीति के महीन खेल

राजनीति समाज व्यवस्था का एक ऐसा विभाग है, जिसमें बहुत ही महीन कूटनीति का उपयोग किया जाता है। भारत की राजनीति में भी यह बात साफ दिख रही है। इस मामले में अरविंद केजरीवाल और अमित शाह को बड़ा कूटनीतिज्ञ माना जा सकता है। जिस तरह गुप्त रूप से अरविंद केजरीवाल ने जंतर-मंतर के आंदोलन की तैयारी की, यह अरविंद केजरीवाल को एक बड़ा कूटनीतिज्ञ ही प्रमाणित करती है। दूसरी ओर, जिस तरह अमित शाह ने ओवैसी को खड़ा कर दिया और विपक्ष को बहुत बड़ा झटका दिया, यह कोई साधारण कूटनीति का खेल नहीं है। ऐसा लगता है कि बिहार में प्रशांत किशोर को भी मजबूत करने का कोई अमित शाह का कूटनीतिक खेल चल रहा है। कभी-कभी तो ऐसा भी दिखता है कि राहुल गांधी को भी राजनीतिक शक्ति देने में अमित शाह की कूटनीति काम कर रही है। जिस तरह राहुल गांधी का आत्मविश्वास बढ़ाया जा रहा है और राहुल गांधी सरीखा नासमझ अपने को एकमात्र प्रधानमंत्री मानने की हिम्मत कर रहा है, इतनी बड़ी कूटनीति अमित शाह ही कर सकते हैं। अभी बात पूरी तरह

साफ नहीं हुई है, लेकिन धीरे-धीरे यह बात समझ में आने लगी है।

4 भविष्यवाणियों की बाढ़ और समाज में फैलता भ्रम

समाज में अनेक प्रकार के भविष्यवक्ताओं की बाढ़ आई हुई है। अनेक लोग दुनिया के समाप्त होने की भी भविष्यवाणी कर रहे हैं। अनेक लोग राजनीतिक चुनाव में जीतने-हारने की भी भविष्यवाणी कर रहे हैं। अनेक तरह की भविष्यवाणियाँ समाज में भ्रम पैदा करती हैं। मेरा ऐसा मानना है कि यदि कोई भविष्यवाणी गणित के आधार पर होती है, तो वह भविष्यवाणी सच हो सकती है। यदि कोई भविष्यवाणी रिसर्च के आधार पर होती है, तो उसके सच होने की भी संभावना रहती है। लेकिन यदि कोई भविष्यवाणी भाग्य के आधार पर होती है, जिसका कोई सिर-पैर नहीं होता, तो इस तरह की भविष्यवाणियों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। कोई भी भविष्यवाणी जो अवैज्ञानिक है, वह सच हो ही नहीं सकती। इस प्रकार की भविष्यवाणियाँ 50% सच और 50% झूठ होती हैं। कभी नास्त्रेदमस के नाम से, कभी बंगा बाबा के नाम से, कभी किसी और नाम से इस प्रकार की अवैज्ञानिक भविष्यवाणियाँ समाज में प्रचलित होती हैं। हम इस प्रकार की भविष्यवाणियों का न तो विरोध कर सकते हैं, न समर्थन कर सकते हैं, लेकिन इन भविष्यवाणियों पर जरा भी विश्वास नहीं करना चाहिए। मैंने अपने जीवन में इस तरह की कोई भविष्यवाणी कभी नहीं की है। चुनाव के संबंध में भी सिर्फ अनुमान लगाया जा सकता है, भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। कोई भी ग्रह-नक्षत्र समाज पर अवैज्ञानिक प्रभाव नहीं डाल सकता। हम समाज में इस बात की जागृति फैलाते रहेंगे कि भविष्यवाणियों पर कभी विश्वास मत करिए।

5 एआई के नाम पर भय और भविष्यवाणियों का भ्रम

आजकल दुनिया में ऐसे भी अनेक भविष्यवक्ताओं की बाढ़ आई हुई है, जो हमें इस बात से भयभीत करते हैं कि एआई सारी दुनिया का सर्वनाश कर देगा। यह बात सच भी हो सकती है और झूठ भी हो सकती है, लेकिन इसका समाधान न किसी व्यक्ति से संभव है, न देश से संभव है। इसका समाधान तो पूरा समाज मिलकर करेगा या दुनिया के देश मिलकर करेंगे। ऐसा ही भय पहले एटम बम के बारे में भी व्यक्त किया गया था, लेकिन एटम बम का अभी तक कोई घातक परिणाम सामने नहीं आया है। जिन देशों के पास भी वर्तमान समय में एटम बम है, वे आक्रमण के लिए कभी प्रयोग नहीं किए गए हैं। इसी तरह एआई का भी संभव है। जिस तरह एटॉमिक एनर्जी का अच्छा उपयोग हुआ, उसी तरह एआई का भी अच्छा उपयोग हो सकता है

और यदि एआई का दुरुपयोग होगा, तो दुनिया इसे एक वैश्विक समस्या मानकर इस तरह गंभीरता से विचार करेगी, जैसा एटम बम के बारे में हुआ था। इसलिए मेरा अपने तथाकथित विद्वानों से निवेदन है कि वे समाज में अनावश्यक भय न बनाएँ। इसका न तो किसी व्यक्ति के पास समाधान है, न किसी देश के पास। मैं भारत सरकार से निवेदन करूँगा कि एआई के मामले में दुनिया जिस दिशा में चल रही है, भारत भी उस दिशा में तेजी से आगे बढ़े और दुनिया इस संबंध में मिलकर जो निर्णय लेगी, उस निर्णय को स्वीकार करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। मैं वर्तमान समय में एटम बम अथवा एआई के मामले में भारत सरकार जो निर्णय कर रही है, उस निर्णय के पक्ष में हूँ।

6 डोनाल्ड ट्रंप पर आरोप और राजनीतिक नैतिकता की कसौटी

अब तक हम यह मानते रहे हैं कि भारत में राजनेताओं का आर्थिक भ्रष्टाचार सबसे अधिक रहा है। यह अलग बात है कि पिछले 20 वर्षों से मनमोहन सिंह, नरेंद्र मोदी और योगी आदित्यनाथ ने इस रिकॉर्ड को थोड़ा-सा कमजोर किया है, लेकिन फिर भी अभी तक भारतीय राजनेताओं का यह रिकॉर्ड माना ही जाता है। किंतु आज अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रंप के विषय में जितनी गंदी खबर आई, उसने भारतीय भ्रष्टाचार को भी कई गुना पीछे छोड़ दिया है। आप विचार करिए कि ट्रंप पर यह आरोप लग रहा है कि ट्रंप ने अपना चुनाव जीतने के लिए रूस के राष्ट्रपति पुतिन की मदद ली, लेकिन इससे भी ज्यादा गंभीर आरोप है कि ट्रंप के लड़के के विवाह में रूस के राष्ट्रपति के एक मित्र उद्योगपति ने सारा खर्च उठाया। एक तरफ मनमोहन सिंह, नरेंद्र मोदी और योगी आदित्यनाथ सरीखे बहुत गरीब राजनेता और दूसरी तरफ ट्रंप का परिवार इतना बड़ा उद्योगपति, उसके बाद ट्रंप का इस तरह शत्रु देश के साथ घालमेल—यह बहुत बड़ा लांछन पैदा करता है। अमेरिका को और अमेरिका की जनता को इस विषय पर गंभीरता से सोचना चाहिए। किसी भी राजनेता के लिए शारीरिक कमजोरी क्षम्य हो सकती है, लेकिन आर्थिक कमजोरी बहुत बड़ा लांछन है।

7 हिंदुत्व के चार महापुरुष और उनके विचारों की चार दिशाएँ

स्वतंत्रता के पहले हिंदुत्व की चिंता करने में चार महापुरुषों को प्रमुख माना जाता है। एक थे स्वामी दयानंद, दूसरे थे स्वामी विवेकानंद, तीसरे थे हेडगेवार जी और चौथे थे महात्मा गांधी। इन चारों ने हिंदुत्व के विषय में चार तरीके के समाधान बताए। स्वामी दयानंद ने बताया कि हिंदुओं की कुरीतियाँ सबसे बड़ी समस्या हैं। यदि हिंदुओं में

से कुरीतियों को हटा दिया जाए, तो हिंदुत्व बहुत सफल हो जाएगा। स्वामी विवेकानंद ने यह बताया कि हिंदुत्व की यदि तर्कशक्ति को जागृत कर दिया जाए और हिंदुत्व की अच्छाइयों को दुनिया में पहुँचा दिया जाए, तो हिंदुत्व सफल हो जाएगा। हेडगेवार ने यह बताया कि यदि इस्लाम पर नियंत्रण कर लिया जाए, तो हिंदुत्व बच जाएगा, अन्यथा हिंदुत्व खत्म हो जाएगा। गांधी ने यह बताया कि जब तक राज्य शक्ति पर समाज का नियंत्रण नहीं होगा, तब तक हिंदुत्व नहीं बचेगा। राज्य पूरी समाज व्यवस्था को निगल लेगा और उसमें हिंदुत्व शामिल है। यद्यपि चारों के अपने-अपने महत्त्व हैं और चारों के विचार अपनी-अपनी दिशा में काम कर रहे हैं, यदि ये चारों विचार एक साथ मिलकर कोई एक मार्ग खोज लें, तो हिंदुत्व बच भी जाएगा, हिंदुत्व मजबूत भी हो जाएगा, हिंदुत्व की बुराइयाँ भी दूर हो जाएँगी और हिंदुत्व राज्य पर नियंत्रण भी कर लेगा। आवश्यकता इस बात की है कि हिंदुत्व की चिंता करने वाले ये सभी लोग एक साथ बैठकर हिंदुत्व पर सोचें।

8 सुरेंद्र कोली प्रकरण: न्याय और कानून के बीच टकराव

पता चला है कि बहुचर्चित अपराधी और कानून से निर्दोष सिद्ध सुरेंद्र कोली ने आत्महत्या कर ली। अब आप विचार करिए कि न्याय और कानून में से अंतिम विजय किसकी हुई। सुरेंद्र कोली का घटनाक्रम इस संबंध में सबसे अच्छा उदाहरण है। यह बात स्पष्ट है कि सुरेंद्र कोली ने अपने जीवन में अनेक आपराधिक घटनाएँ कीं, लेकिन वह कानून से बच गया, क्योंकि कानून में इतनी कमियाँ हैं कि उन कमियों का लाभ अपराधियों को मिलता ही है। सुरेंद्र कोली को कई बार फाँसी का आदेश हुआ, फाँसी होते-होते कानून से रुक गई और अंत में सुरेंद्र कोली ने खुद फाँसी लगा ली। स्पष्ट है कि आज न्याय और कानून के बीच एक सीधा टकराव दिख रहा है। इस टकराव में दुनिया कानून की परिभाषा नहीं बदल रही है, न्याय की परिभाषा बदल रही है, जबकि होना तो यह चाहिए था कि यदि न्याय और कानून में टकराव होता है, तो न्याय की परिभाषा नहीं बदल सकती, कानून की बदलनी चाहिए। यदि आम लोगों को न्याय देने में कानून असफल सिद्ध होता है, तो उस कानून को बदल देना चाहिए। हम यह कहकर स्वयं को नहीं बचा सकते कि सुरेंद्र कोली को ईश्वर ने न्याय दिया। यह एक अपूर्ण सिद्धांत है। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति को श्रेष्ठतम न्याय मिले और उस न्याय के लिए कानून में बदलाव किया जाए। हमें सुरेंद्र कोली के मामले में इस बात पर गंभीर बहस छेड़नी चाहिए थी कि कानून में ऐसी कौन-सी कमियाँ रहीं कि सुरेंद्र कोली कानून से बच गया था और उसने स्वयं न्याय का सहारा लिया।

9 जातीय आरक्षण और जातीय विशेषाधिकार: दो अलग-अलग प्रश्न

जातीय आरक्षण का पक्ष और विरोध लगातार तेज होता जा रहा है, लेकिन इस मामले में और अधिक गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। आरक्षण का मामला सिर्फ जातीय आरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मामला दो प्रकार से संचालित होता है। एक है जाति आरक्षण और दूसरा है जातीय विशेष अधिकार। जातीय आरक्षण कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं है। उससे आमतौर पर सवर्ण अधिक आतंकित नहीं हैं, लेकिन जातीय विशेष अधिकार एक बहुत बड़ी समस्या है। वर्तमान समय में छुआछूत भी घट रही है, जाति भेदभाव भी घट रहा है, किंतु जाति के नाम पर दलितों और आदिवासियों के दो प्रतिशत धूर्तों का अत्याचार बढ़ रहा है। यह विशेष अधिकार इस समस्या को कई गुना अधिक विकट बना रहा है, क्योंकि इस प्रकार के आरोप लगाते ही आरोप लगाने वाले को आर्थिक सहायता भी मिल जाती है, वह कुछ जातियों में हीरो बन जाता है, उसकी ब्लैकमेलिंग क्षमता बढ़ जाती है और उसका परिणाम होता है शरीफ सवर्णों का शोषण। उसका परिणाम होता है सवर्णों के अंदर आक्रोश। मेरे विचार से इसका बहुत आसान समाधान हो सकता है कि आप जातीय विशेष अधिकार को सामान्यतया समाप्त कर दीजिए। विरले मामलों में ही इस मामले में कार्रवाई हो। साथ ही, आप जाति आरक्षण को इसी तरह रहने दीजिए। विरले मामलों में ही जाति आरक्षण को समाप्त किया जाए। स्पष्ट है कि एक आर्थिक सीमारेखा बनाकर जाति आरक्षण को कायम रखा जाए और एक महत्वपूर्ण सीमारेखा बनाकर ही जातीय विशेष अधिकार को समाप्त कर दिया जाए।

10 आरक्षण के दुरुपयोग और सामाजिक न्याय के बीच बढ़ता टकराव

हम यह बात अच्छी तरह देख चुके हैं कि पिछली कांग्रेस सरकार को हटाने में महत्वपूर्ण भूमिका कुछ मुट्ठी भर सांप्रदायिक मुसलमानों की ही रही है। उन्होंने भारत में हिंदुओं के सामने ऐसी परिस्थितियाँ बना दीं कि हिंदुओं को एकजुट होने के अतिरिक्त और कोई अन्य मार्ग नहीं था। उन्होंने संवैधानिक और कानूनी श्रेष्ठता भी प्राप्त की। दूसरी ओर, उन्होंने समाज के शरीफ लोगों पर अत्याचार भी शुरू किया और उसका परिणाम हमने एक सांस्कृतिक बदलाव के रूप में अनुभव किया। अब ऐसा दिख रहा है कि कुछ मुट्ठी भर अंबेडकरवादियों ने वही प्रयोग फिर शुरू कर दिया है। कानूनी रूप से तो उन्हें संरक्षण प्राप्त है ही, लेकिन वे निरंतर दबाव बनाकर एक तरफ अधिक संरक्षण प्राप्त करना चाहते हैं, दूसरी तरफ वे शांतिप्रिय लोगों पर अनेक प्रकार के आपराधिक अत्याचार भी शुरू कर रहे हैं। रोहित

वेमुला कांड एक ऐसा ही उदाहरण था और अब मुंबई में एक प्रोफेसर के साथ जो हुआ है, वह उसका ही एक अतिवादी स्वरूप है। अंबेडकरवादियों का मनोबल इतना बढ़ गया है कि सारी व्यवस्था को निगल लेने के बाद भी उनका पेट नहीं भर रहा है और अब पेट फटने की स्थिति पैदा हो गई है। मुंबई के बेचारे प्रोफेसर के साथ बहुत अन्याय हुआ है। सरकार चुपचाप तमाशा देखने के लिए मजबूर है, क्योंकि जब तक अत्याचार नहीं बढ़ेगा, तब तक सामाजिक शक्तियाँ एकजुट नहीं होंगी। अब समय आ गया है कि आरक्षण के दुरुपयोग के नाम पर अत्याचार करने वाले लोगों के खिलाफ पूरा समाज एकजुट हो और अब इस तरह उन्हें सबक सिखाया जाए, जिस तरह साम्यवाद और दारुल इस्लाम के गठजोड़ को भारत की जनता ने सबक सिखाया है।

11 रूढ़िवादी संस्कारों से मुक्त होकर नई परिवार व्यवस्था की ओर

विचार और संस्कार प्रत्येक व्यक्ति में होते हैं, भले ही कम-ज्यादा हों। कुछ लोग विचार-प्रधान अधिक होते हैं, तो कुछ लोग संस्कार-प्रधान अधिक होते हैं। विचारक वर्तमान में जीता है और संस्कार-प्रधान व्यक्ति भूतकाल में जीता है। विचारक वर्तमान समस्याओं के समाधान खोजता है और व्यक्ति उन समाधानों के अनुसार अपने संस्कार बनाता है। इसलिए न कभी संस्कार अंतिम होते हैं और न विचार अंतिम होते हैं। वर्तमान दुनिया में और विशेषकर भारत में विचारों का अभाव हो रहा है। संस्कार बहुत महत्वपूर्ण बनते जा रहे हैं। रूढ़िवाद आगे आ रहा है। यही कारण है कि हम महिलाओं और बच्चों के विषय में भी पुराने संस्कारों को आँख बंद करके आगे ले जा रहे हैं, जबकि विचार यह निष्कर्ष दे रहे हैं कि महिलाओं और बच्चों को अपना सहभागी माना जाए, सहयोगी नहीं। आज यदि महिला और पुरुष, बालक और वृद्ध के बीच कोई टकराव दिख रहा है, तो इसका मुख्य कारण यही है कि हम पुराने संस्कारों को नए विचारों से जोड़कर नहीं देख रहे हैं। आइए, अब हम आप मिलकर समाज को यह संदेश दें कि महिलाएँ और बच्चे परिवार के सहभागी होते हैं, सहयोगी नहीं। संस्कारों को बदलिए। अब रूढ़िगत संस्कार आपकी परिवार-व्यवस्था को बहुत नुकसान पहुँचाएँगे। अब परिवार को एक प्राकृतिक इकाई नहीं, बल्कि एक संगठनात्मक इकाई समझने की जरूरत है। दो दिन पहले मैनपाट में हम लोगों ने अपनी पारिवारिक मीटिंग में भी इस विषय पर गंभीरता से चिंतन किया है।

12 भारतीय मुसलमान, वैश्विक मुस्लिम बिरादरी और राष्ट्रीय निष्ठा

जमीयत उलेमा-ए-हिंद के प्रमुख और मुसलमानों के एक बड़े धार्मिक नेता महमूद मदनी ने यह बात साफ कर

दी है कि भारत में मुसलमानों के साथ जिस तरह दूसरे दर्जे का व्यवहार किया जा रहा है, इसकी शिकायत हम संयुक्त राष्ट्र संघ से करने के लिए स्वतंत्र हैं। हम मुसलमान भारत से बँधे हुए नहीं हैं, बल्कि हम विश्व मुस्लिम बिरादरी का एक भाग हैं और हम पूरी दुनिया की बिरादरी से संचालित होते हैं। आश्चर्य है कि महमूद मदनी ने अपनी संस्था के आगे हिंद शब्द भी लगाया हुआ है और उन्हें भारत की न्यायपालिका पर विश्वास नहीं है, भारत के संविधान पर विश्वास नहीं है, भारत की धर्मनिरपेक्षता पर विश्वास नहीं है। उन्हें विश्वास है संयुक्त राष्ट्र संघ पर। यह आश्चर्यजनक है कि अब तक भारत के अन्य मुसलमानों ने महमूद मदनी के इस बयान की कोई निंदा नहीं की है। यहाँ तक कि भारत की अर्ध-मुस्लिम राजनीतिक पार्टियों के भी इस बयान पर चुप रहने से ऐसा लगता है कि किसी की जुबान नहीं खुल रही है कि महमूद मदनी ने यह बयान किस आधार पर दिया और पूरे भारत में इसकी निंदा क्यों नहीं होनी चाहिए। जिन राजनीतिक दलों ने भारत में मुसलमानों को विशेष अधिकार दिए थे, उन राजनीतिक दलों पर यह जिम्मेदारी आ जाती है कि वे अपनी गलती को स्वीकार करें। यदि आज भारत में मुसलमानों को भी समान अधिकार दिए गए होते, तो भारत के किसी मुसलमान में इतनी हिम्मत नहीं आती कि वह भारतीय संविधान और भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था को दरकिनार कर संयुक्त राष्ट्र संघ में आवाज उठाने की हिम्मत कर पाता। अब भी समय है कि भारत के अर्ध-मुस्लिम विपक्षी नेता अपने मुसलमान साथियों को समान नागरिक संहिता स्वीकार करने के लिए तैयार कर लें।

13 नेहरू से राहुल गांधी तक: लोकतंत्र, संविधान और राजनीतिक विरोधाभास

पंडित नेहरू एक बहुत ही नाटकबाज प्रधानमंत्री हो चुके हैं। वह जो बात बोलते थे, करते उससे ठीक उल्टा थे। उन्होंने जीवन भर अपने को लोकतांत्रिक सिद्ध किया, लेकिन हमेशा तानाशाही के कानून बनाते रहे। उन्होंने हमेशा अपने को धर्मनिरपेक्ष कहा, लेकिन पूरी तरह सांप्रदायिक रहे। उन्होंने हमेशा अपने को गांधी भक्त कहा, लेकिन पूरी तरह गांधी के विचारों के विपरीत काम करते रहे। वे सब काम उल्टा करके भी अपने जीवन में सफल रहे। अब राहुल गांधी भी इस मार्ग पर चल रहे हैं। राहुल गांधी कहते हैं कि मैं मोहब्बत की दुकान खोला हूँ और उनकी दुकान में कराटे सिखाया जाता है। प्रियंका गांधी कहती हैं, लड़की हूँ, लड़ सकती हूँ। कैसी मोहब्बत की दुकान है! राहुल गांधी संविधान को पॉकेट में रखकर चलते हैं और दूसरों के सामने संविधान दिखाते हैं, लेकिन कल ही राहुल गांधी ने घोषणा की है कि हमारी सरकार बनेगी, तो हम मुख्य चुनाव आयुक्त को जेल में डाल देंगे। उनके लोगों ने कई बार यह घोषणा की है कि हम संघ पर प्रतिबंध लगा

देंगे। आज तक उन्होंने यह नहीं कहा कि वे संविधान में कैसे बदलाव करेंगे। वे संघ पर प्रतिबंध संविधान के अंतर्गत लगाएंगे या इंदिरा गांधी की नीति पर चलकर लगाएंगे। कैसे वे किसी व्यक्ति को न्यायालय से दूर जाकर जेल में बंद कर देंगे? संघ पर प्रतिबंध कैसे लगा देंगे? कल तो उन्होंने इतने घमंड की बात की थी कि जैसे संविधान वास्तव में उनकी मुट्ठी में कैद है। आज जरूर कुछ नशा उतरा है, तो उन्होंने यह कहा कि हम महाभियोग लाएंगे। यह एक संवैधानिक बात हो सकती है, लेकिन जिस तरह राहुल गांधी तानाशाही की बातें कर रहे हैं, अब उन्हें नेहरू का जमाना भूल जाना चाहिए।

14 पंचायत, पुलिस और न्यायालय: त्वरित न्याय की नई व्यवस्था

हम यह महसूस करते हैं कि वर्तमान समय में अपराधों में दंड का संतुलन नहीं है। गंभीर अपराधों में दंड कम मिल रहा है और साधारण अपराधों में अधिक मिल रहा है। इसके कारण बड़े-बड़े अपराधियों में भय की मात्रा घटती जा रही है और साधारण अपराधी लगातार डर रहे हैं। इस असंतुलन को बदलना चाहिए। यदि कोई भूल हो जाती है, तो उसे छोटा अपराध मानकर साधारण दंड देना चाहिए। यदि कोई योजना बनाकर, सोच-समझकर अपराध करता है, तो उस अपराध में गंभीर दंड देना चाहिए। अल्पकाल के लिए बड़े अपराधों का निर्णय पुलिस और न्यायालय करें और साधारण अपराध पंचायत को दे दिए जाएँ। साथ ही, मेरा यह मानना है कि पेशेवर अपराधियों को फाँसी से कम नहीं होनी चाहिए, क्योंकि पेशेवर अपराध लगातार बढ़ते जा रहे हैं और पेशेवर अपराध हमारे लिए कलंक बन गए हैं। यह कैसे उचित होगा कि एक व्यक्ति किसी मजबूरी में बलात्कार करता है और एक व्यक्ति सोच-समझकर, पेशेवर तरीके से अपहरण और बलात्कार करता है, तो दोनों का दंड एक समान कैसे हो सकता है? मजबूरी में की गई चोरी और योजना बनाकर की गई चोरी का दंड अलग-अलग होना ही चाहिए। साथ ही, फाँसी की सजा और अधिक दी जानी चाहिए। हम यह माँग करते हैं कि अपराधियों में भय बनना चाहिए और गलती करने वालों का भय कम होना चाहिए। हम कम कानून, कठोर कानून की माँग करते हैं। हम त्वरित और भय-उत्पादक न्याय की वकालत करते हैं।

15 कृत्रिम बुद्धिमत्ता, फर्जी तस्वीरें और लोकतंत्र की विश्वसनीयता

राजनीति का स्तर बहुत गिर गया है, यह बात तो हम लंबे समय से समझते रहे हैं, लेकिन वह इतना अधिक नीचे गिर गया है कि समाज में इसकी चिंता होने लगी है। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण अभी मिला है। जंतर-मंतर पर कॉकरोच पार्टी ने जो प्रदर्शन किया था, उस प्रदर्शन में एक

चित्र प्रचारित किया गया था, जिसमें भारत के प्रधानमंत्री को एक महिला के साथ दिखाया गया था। प्रधानमंत्री जी ने उस घटना को नज़रअंदाज़ भी किया था, लेकिन अब यह बात साफ हो गई है कि वह चित्र नकली था और एआई से जानबूझकर बनाया गया था। वह महिला भी अब सामने आ गई है, जिसका यह नकली चित्र बनाया गया था। आपको आश्चर्य होगा कि जंतर-मंतर पर आंदोलन के आयोजक दीपक सहित अन्य चार सर्वोच्च पदाधिकारी इसमें संलिप्त पाए जा रहे हैं। अब उच्च न्यायालय से इन चारों को नोटिस भी जारी हुआ है और मुकदमा भी कायम कर दिया गया है। यह गंभीर चिंता का विषय है कि किसी राजनीतिक दल के सर्वोच्च पदाधिकारी इस प्रकार के नकली चित्र प्रचारित और प्रसारित करने में संलिप्त पाए जाएँ। यह भी आश्चर्यजनक है कि राजनीति की इतनी निर्लज्जता समाज के बीच गंदगी फैला रही है। इसके पहले भी हम लोग एपस्टीन फाइल्स के नाम से नकली चित्र प्रचारित करने की बात सुन चुके हैं, लेकिन उस मामले में अभी तक इस तरह का कोई प्रत्यक्ष अपराध सामने नहीं आया था, जैसा जंतर-मंतर का यह मामला सामने आया है। मैं उस महिला को धन्यवाद देता हूँ कि उसने इतना बड़ा पर्दाफाश किया है।

16 सुप्रीम कोर्ट के फैसले और राजनीतिक विचारधाराओं के बीच टकराव

आजकल भारत के कम्युनिस्ट नरेंद्र मोदी से उतने परेशान नहीं हैं, जितने सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश और मुख्य चुनाव आयुक्त से परेशान हैं, क्योंकि एक तरफ सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश कम्युनिस्ट वकीलों और न्यायाधीशों के दबाव से मुक्त होकर कार्य कर रहे हैं, तो दूसरी ओर चुनाव आयुक्त ने भी कम्युनिस्टों के सबसे अधिक मददगार मुस्लिम मतदाताओं की बड़ी संख्या को मतदाता सूची से बाहर कर दिया है। दोनों ही बातें हमारे साम्यवादी मित्रों को पसंद नहीं हैं। बड़ी मुश्किल से हमारे साम्यवादियों ने मिलकर कलेक्टर मेधा रूपम पर पाँच लाख का जुर्माना लगवाया था, लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने जितनी आसानी से उस जुर्माने पर रोक लगा दी, यह हमारे कम्युनिस्ट अधिवक्ताओं को बिल्कुल भी पसंद नहीं आया। यह बात वे भी जानते हैं कि यह जुर्माना तो माफ होना ही है, लेकिन इतनी जल्दी और इतनी आसानी से यह मामला निपट जाएगा, यह बात उन्हें बहुत नागवार गुज़री है। यह बात सच है कि एक ज़माना था, जब भारत के सुप्रीम कोर्ट में 90% तक कम्युनिस्ट जज होते थे और अब वह संख्या घटकर 30-40% तक आ गई है। हमारे कम्युनिस्ट वकीलों की भी पहले एकछत्र तूती बोलती थी, अब उन्हें दूसरे दर्जे का स्थान मिल रहा है। लेकिन समय बदलता है और बदल गया है। इस सच्चाई को उन्हें स्वीकार करना चाहिए। अभी तो भविष्य में सुप्रीम कोर्ट में भी कम्युनिस्ट

जजों का अनुपात और घटेगा, और आप लोगों को अभी बहुत बुरे दिन देखना बाकी हैं।

17 टी.एन. शेषन से ज्ञानेश कुमार तक: चुनाव आयोग की विश्वसनीयता की कसौटी

यदि भारत में हम चुनाव आयुक्त की चर्चा करें, तो एक नाम टी. एन. शेषन का आता है, जो अपने कार्यकाल में पूरी तरह विवादास्पद रहे और आज देश के मतदाताओं को उनकी याद आती है। इस तरह वर्तमान मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार भी अपने कार्यकाल में विवादास्पद बने हुए हैं और हो सकता है कि भविष्य में उन्हें शेषन से भी आगे मान लिया जाए। यह तो सिर्फ भविष्य ही बता सकता है, लेकिन सारी बातें दो बातों पर टिकी हुई हैं। यह बात सच है कि ज्ञानेश कुमार ने पिछले एक वर्ष में बहुत हिम्मत का काम किया है। 13 करोड़ मतदाताओं को मतदान से वंचित करना कोई साधारण काम नहीं था। इनमें भी लगभग आधे मुसलमान माने जाते हैं और उनमें भी बड़ी संख्या विदेशी मुसलमानों की है, जो हो सकता है कि एक करोड़ के आसपास भी हो। प्रश्न यह उठता है कि 13 करोड़ मतदाता, जो वंचित किए गए, वे यदि चुनाव में शामिल होते, तो चुनाव परिणाम सही होता या गलत? एक वर्ष पहले जो भी चुनाव हुए, उनमें ये 13 करोड़ मतदाता मतदान कर रहे थे। अब यह बात सिद्ध हो जाती है कि या तो एक वर्ष पहले हुए चुनाव गलत थे अथवा वर्तमान चुनाव गलत हैं। यह निर्णय अंतिम रूप से तो अब भारत की जनता ही कर सकती है कि क्या मतदान से वंचित किए गए 13 करोड़ मतदाता सही थे या गलत। हो सकता है कि इनमें 25-50 लाख सही मतदाता भी छूट गए हों। हो सकता है कि ये 13 करोड़ मतदाता सभी विपक्षी दलों को ही वोट देते हों और विपक्ष ने लंबे समय तक बहुत मेहनत करके इस तरह के नाम शामिल कराए हों। दोनों ही बातें सच हो सकती हैं। लेकिन एक बात अवश्य सही है कि या तो पहले के चुनाव बेईमानी से कराए गए थे और वे नकली मतदाताओं के आधार पर हुए थे, अथवा वर्तमान चुनाव नकली मतदाताओं के आधार पर हो रहे हैं। मैं भारत की आम जनता से यह उम्मीद करता हूँ कि वे अपने-अपने क्षेत्र में सर्वे करके इस बात का पता करें कि 13 करोड़ मतदाताओं में से वास्तव में हटाए गए लोगों के नाम सही थे या गलत। भारत की जनता ही निर्णय कर सकती है, न सरकार और न विपक्ष। मैंने अपने छोटे से शहर में इस संबंध में जो निष्कर्ष निकाला, उसमें मैं ज्ञानेश कुमार के पक्ष में हूँ। जिन मतदाताओं के नाम हटाए गए हैं, उनमें से अधिकांश नाम हटाने योग्य थे, क्योंकि हटाए गए नामों में मेरा नाम भी शामिल है। विपक्ष को यह भी उत्तर देना चाहिए कि केंद्र और प्रदेश की मतदाता सूचियाँ ज्ञानेश कुमार बना रहे हैं, लेकिन स्थानीय संस्थाओं में विपक्ष

लगातार क्यों हार रहा है? अभी नगरीय निकायों के जो चुनाव हुए, उनमें तो मतदाता सूचियाँ स्थानीय स्तर पर बनाई गई थीं और वे कांग्रेस शासनकाल की थीं। कानून के अनुसार ज्ञानेश कुमार जेल जाएँगे या भारत रत्न पाएँगे, यह विषय अलग है। लेकिन मतदान से वंचित किए गए 13 करोड़ मतदाताओं में से कितने प्रतिशत सही निकलते हैं और कितने प्रतिशत गलत, इसका निर्णय भारत की जनता कर लेगी। इसी पर विपक्ष और सरकार की विश्वसनीयता टिकी रहेगी।

18 एस.वाई. कुरैशी की आपत्तियाँ और मतदाता सूची संशोधन पर बहस

यह बात साफ हो गई है कि वर्तमान मतदाता सूचियों में से जिन 13 करोड़ लोगों के नाम हटाए गए हैं, उनमें लगभग आधे मुसलमान हैं। इस विषय पर वर्तमान समय में मैं जिसे सबसे अधिक सक्रिय मान रहा हूँ, वे पूर्व चुनाव आयुक्त एस.वाई. कुरैशी हैं। उनका एक लेख मैंने आज नवोदय अखबार में पढ़ा। आपको याद दिला दूँ कि भारत में लगभग 15 पूर्व चुनाव आयुक्त हो चुके हैं, जिनमें दो मुसलमान थे। उनमें भी कुरैशी साहब को ही सबसे ज्यादा इस बात की चिंता है कि मतदाता सूचियाँ गलत बनाई गईं और उन सूचियों में से जानबूझकर मतदाताओं के नाम हटाए गए। स्वाभाविक है कि कुरैशी जी को इस बात की बहुत चिंता है कि जिन लोगों के नाम विदेशी होते हुए भी कुरैशी जी या अन्य लोगों ने जोड़े थे, उन अपने लोगों के नाम इसमें से निकाल दिए गए हैं। कुछ ऐसा ही हाल भारत के राष्ट्रपतियों और उपराष्ट्रपतियों का भी है। वर्तमान में पूर्व उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी जीवित हैं। वे एकमात्र ऐसे सक्रिय प्रवक्ता हैं, जिनका हर भाषण सिर्फ सांप्रदायिक ही होता है। यह बात साफ दिखाई दे रही है कि मतदाता सूचियों में बड़ी संख्या में जिन मुसलमानों को बहुत प्रयत्न करके जोड़ा गया था, उन लोगों का इतनी आसानी से बाहर होना हमारे मुसलमान भाइयों या मुस्लिम नेताओं को बिल्कुल पसंद नहीं है। साथ-साथ, उन मुस्लिम मतदाताओं के भरोसे चुनाव जीतने वाले लोग भी चिंतित हैं। मैं यह बात साफ कर देना चाहता हूँ कि भारत अब अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता से नहीं चलना चाहिए, बल्कि भारत को अब धर्मनिरपेक्ष आधार पर चलना चाहिए। कुरैशी जी को उत्तर देना चाहिए कि वे इतने अधिक चिंतित क्यों हैं। कहीं सांप्रदायिकता ही तो महत्वपूर्ण विषय नहीं है? विदेशी मुसलमानों के नाम इस तरह जोड़ने के कारण कहीं जेल जाने की नौबत न आ जाए, यह भी सोचते रहिए।

19 राहुल गांधी के सामने राजनीतिक चुनौती और बदलते भारत का जनमत

राहुल गांधी ने कल एक भाषण में यह बात साफ की कि इंदिरा गांधी इतनी अधिक लोकप्रिय नेता थीं और

उनकी लोकप्रियता शिखर पर थी। इसके बाद भी अंदर-अंदर ऐसी क्या एंटी-इनकंबेंसी हुई कि वे चुनाव हार गईं? दूसरी तरफ, नरेंद्र मोदी की लोकप्रियता नहीं है, इसके बाद भी नरेंद्र मोदी लगातार चुनाव जीत रहे हैं। इसका रहस्य खोजा जाना चाहिए। अवश्य ही इसमें कोई-न-कोई गुप्त रहस्य है और हो सकता है कि वह रहस्य मुख्य चुनाव आयुक्त को मालूम हो। मेरे विचार से यह कोई रहस्य नहीं है। यह बात दुनिया जानती है और मैं भी कह सकता हूँ कि यह रहस्य राहुल गांधी को भी मालूम है। जब तक राहुल गांधी मुसलमानों से धर्मनिरपेक्षता की बात नहीं करेंगे, जब तक राहुल गांधी कम्युनिस्टों और मुसलमानों, इन दोनों के कंधों पर सवार रहेंगे, तब तक राहुल गांधी के सामने खतरा है। अब हिंदू बहुमत कम्युनिस्टों और मुसलमानों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। राहुल गांधी को दो में से एक काम करना चाहिए। या तो राहुल गांधी समान नागरिक संहिता का समर्थन कर दें। संभव है कि अगले कुछ वर्षों में स्थिति में बदलाव आ सकता है। अन्यथा राहुल गांधी अपने नाम के आगे से गांधी शब्द हटाकर गांधी मार्ग पर चलना शुरू कर दें। राहुल गांधी लोक स्वराज की घोषणा करें। हम गांधीवादी अपनी नीतियों पर फिर से सोच सकते हैं। जब तक राहुल गांधी इन दो में से एक काम नहीं करते हैं, तब तक राहुल गांधी चाहे सिर पटक दें, भारत की जनता उन्हें स्वीकार नहीं कर सकती है। भारत की जनता न दारुल इस्लाम को स्वीकार करेगी और न चीन-रूस के साम्यवाद को। अब भारत की जनता को धर्मनिरपेक्षता और स्वतंत्रता का स्वाद समझ में आ गया है। यह बात बिल्कुल साफ है कि राहुल गांधी इन दो में से एक मार्ग चुनें। कोई तीसरा तरीका नहीं है।

20 नितिन गडकरी की एथेनॉल नीति: ऊर्जा आत्मनिर्भरता की नई उम्मीद

हम लोग लंबे समय से सरकार को सलाह देते रहे हैं कि सरकार को डीजल-पेट्रोल के मामले में आत्मनिर्भर बन जाना चाहिए। डीजल-पेट्रोल की खपत कम कर दी जाए और बैटरी से चलने वाली गाड़ियों या एथेनॉल का उपयोग बढ़ाया जाए। यही सबसे अच्छा समाधान है। हम लोगों ने यह भी सलाह दी थी कि कोयले को महंगा किया जाए, जिससे कोयले का उत्पादन बढ़े, खपत कम हो और कोयले का आयात भी कम करना पड़े। कल सड़क परिवहन मंत्री नितिन गडकरी ने यह घोषणा की कि भारत में एक महीने के अंदर 100% एथेनॉल से चलने वाली गाड़ियाँ शुरू हो जाएँगी। हमें बहुत प्रसन्नता हुई। मैं अरविंद केजरीवाल और राहुल गांधी की प्रतीक्षा कर रहा था कि वे आकर कुछ प्रतिक्रिया देंगे, क्योंकि अरविंद केजरीवाल और राहुल गांधी के बीच इस बात का कंपटीशन हो रहा था कि कौन भारत में एथेनॉल के उत्पादन का अधिक विरोध कर

सकता है। अरविंद केजरीवाल ने तो इस संबंध में बड़ी-बड़ी घोषणाएँ की थीं, लेकिन नितिन गडकरी ने इस प्रकार के लोगों को किनारे करते हुए यह बहुत हिम्मत का काम किया है कि हम धीरे-धीरे 100% एथेनॉल से चलने वाली गाड़ियों की ओर बढ़ेंगे। मैं सरकार के इस कदम से पूरी तरह सहमत हूँ। भारत को डीजल-पेट्रोल की खपत बंद कर देनी चाहिए, कोयले का आयात भी कम कर देना चाहिए और कोयले का उत्पादन बढ़ा देना चाहिए। पर्यावरण के नाम पर देश-विरोधी आंदोलन करने वालों को जेल में बंद कर देना चाहिए। मैं नितिन गडकरी की इस घोषणा का स्वागत करता हूँ और अरविंद केजरीवाल, राहुल गांधी तथा काँकरोच पार्टी की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

21 राम बहादुर राय: गांधी-संघ समन्वय और लोक स्वराज के प्रयोगधर्मी चिंतक

दो दिन पूर्व '80 के राय साहब' नाम से एक पुस्तक का विमोचन हुआ। राजनाथ सिंह जी और भूपेंद्र यादव जी ने इस अवसर पर राम बहादुर राय जी को सम्मानित भी किया। राम बहादुर राय ने इस अवसर पर बिल्कुल साफ शब्दों में यह बात स्पष्ट कर दी कि अब भारत गांधी और दीनदयाल जी के मिश्रित विचारों से बनी हुई खिचड़ी पर आधारित मोदी मार्ग पर चल रहा है। उन्होंने तीन शब्दों में बहुत ही साफ बात कही है। यह बात पूरी तरह सच है कि भारत गांधी मार्ग पर चल रहा है। गांधी मार्ग और संघ मार्ग, ये दोनों एक साथ मिलकर भारत का नया मार्ग दिखा रहे हैं, जिसे दीनदयाल मार्ग भी कह सकते हैं। यही वर्तमान भारत का मोदी मार्ग है। इस तरह मुझे यह जानकर खुशी हुई कि राम बहादुर राय ने भरे मंच पर इस सच्चाई को प्रचारित-प्रसारित कर दिया, जिसे हम लोग लंबे समय से बोल नहीं पाते थे। सबसे अच्छी बात यह हुई कि सभी सावरकरवादी और सभी कम्युनिस्ट इस गांधी-दीनदयाल और नरेंद्र मोदी के समीकरण से जल-भुन गए, क्योंकि कोई सावरकरवादी और कोई कम्युनिस्ट यह नहीं चाहता कि संघ इस नए मार्ग पर चले। आज यदि भारत हिंदू राष्ट्र बन चुका है, तो भी भारत धर्मनिरपेक्षता पर ही चलेगा। भारत संवैधानिक तरीके से ही बदलाव करेगा। इस तरह की बात यदि डंके की चोट पर कोई कह सकता है, तो वह शख्स राम बहादुर राय ही हो सकते हैं। मुझे खुशी है कि अब पूरे देश में गांधी और संघ के समन्वय से निकले इस मार्ग की खुलकर चर्चा हो सकेगी। मैं इसके लिए राम बहादुर राय जी को बहुत-बहुत बधाई देता हूँ।

राम बहादुर राय कोई साहित्यकार नहीं, बल्कि एक प्रयोगधर्मी व्यक्ति माने जा सकते हैं। उन्होंने नानाजी देशमुख के कार्य को आगे बढ़ाया। राम बहादुर जी ने यह महसूस किया कि लोक स्वराज ही वर्तमान समस्याओं का सबसे अच्छा समाधान हो सकता है। इसके लिए उन्होंने

संविधान सभा का भी प्रस्ताव दिया, क्योंकि लोक स्वराज को आगे बढ़ाने के लिए एक संविधान सभा अच्छा मार्ग हो सकती है। राम बहादुर जी ने यह बात भी महसूस की कि गांधी और संघ, दोनों के अच्छे लोगों को एक साथ हो जाना चाहिए। पेशेवर लोग गांधी और संघ के बीच टकराव पैदा करके अपनी-अपनी दुकानदारी चलाते रहते हैं। नानाजी देशमुख ने भी इस दिशा में कार्य किया था। राम बहादुर राय और ठाकुरदास जी वंग ने मिलकर भी इस दिशा में आगे बढ़ने का पूरा प्रयत्न किया। इस पवित्र कार्य के लिए राय साहब ने गोविंदाचार्य जी को भी टटोला, अरविंद केजरीवाल के लिए भी मेहनत की और आगे भी लगातार सोचते रहे, लेकिन राय साहब को अच्छी सफलता नहीं मिल सकी। 2017 में यह प्रयत्न रंग लाया। गांधी के विचार और संघ की सक्रियता का एक साथ जुड़ाव हुआ और इन दोनों का जुड़ाव ही आज मोदी मार्ग के रूप में दिखाई दे रहा है। आज यह मोदी मार्ग सिर्फ भारत ही नहीं, बल्कि दुनिया को भी संदेश दे रहा है। निकट भविष्य में लोक स्वराज की दिशा में भी सफलता संभावित है। मेरा ऐसा मानना है कि नानाजी देशमुख द्वारा शुरू किया गया यह कार्य राम बहादुर राय जी के जीवनकाल में ही सफल हो सकता है। हम उनके लंबे जीवन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

22 मोदी मार्ग: नरम हिंदुत्व और समाज सर्वोच्च

मेरे एक मित्र ने फोन करके मुझसे यह जानना चाहा कि यदि बहुत कम शब्दों में मोदी मार्ग को समझना हो, तो आप क्या समझा सकते हैं? मेरे विचार से यदि एक लाइन में मोदी मार्ग को समझना हो, तो वह लाइन है—सिर्फ नरम हिंदुत्व। इस नरम हिंदुत्व में गांधी भी शामिल हो जाते हैं और दीनदयाल उपाध्याय भी। इन दोनों को मिलाकर ही मोदी मार्ग बना है। लेकिन यदि इसको थोड़ा और विस्तार से समझना हो, तो मोदी मार्ग को तीन अलग-अलग दिशाओं में समझा जा सकता है। पहली लाइन है धर्मनिरपेक्षता, दूसरी लाइन है संवैधानिक तरीके से संविधान में संशोधन और तीसरी लाइन है समाज सर्वोच्च। इन तीनों को मिलाकर मोदी मार्ग बनता है। वर्तमान समय में मोहन भागवत और नरेंद्र मोदी पूरी तरह धर्मनिरपेक्षता की लाइन पर चल रहे हैं और समान नागरिक संहिता की दिशा में देश को आगे ले जा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति के साथ धर्म और जाति को देखे बिना समान नागरिक संहिता के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। यह पहली लाइन है। दूसरी लाइन है संवैधानिक तरीके से संविधान में संशोधन। इस दिशा में भी पूरा प्रयत्न जारी है। अभी तक मोदी मार्ग में 12 वर्षों के दौरान कहीं ऐसी सक्रियता नहीं दिखी, जिसमें असंवैधानिक तरीके से संविधान में संशोधन करने की कोई कोशिश की गई हो। भविष्य में भी ऐसी कोई संभावना नहीं

है। तीसरी लाइन है—समाज सर्वोच्च। नरेंद्र मोदी बार-बार यह कहते हैं कि हम सेवक हैं। इस दिशा में नरेंद्र मोदी लगातार आगे भी बढ़ रहे हैं। यह पहली बार है कि भारत की राजनीति किसी एक व्यक्ति पर निर्भर न होकर नरेंद्र मोदी, मोहन भागवत, योगी आदित्यनाथ, अडानी और अंबानी मिलकर चला रहे हैं। स्पष्ट है कि मोदी मार्ग लोकतांत्रिक मार्ग है। विपक्ष में कोई ऐसा नेता नहीं है, जिसके साथ दो लोग मिलकर राजनीति चला रहे हों। सत्ता मिलते ही व्यक्तिगत तानाशाही हो जाती है। मेरे विचार से यही लोकतंत्र है और यही मोदी मार्ग है।

23 कांग्रेस के भुगतान संबंधी दावों पर स्पष्टीकरण का इंतजार

यह बात तो कई दिनों से अनुमान लगाई जा रही थी कि कांग्रेस पार्टी और इंडियन एक्सप्रेस अखबार के बीच किसी प्रकार की आंतरिक साँठगाँठ के अंतर्गत यह समाचार प्रकाशित कराया गया और तुरंत ही विपक्ष ने इस समाचार पत्र की खबर को आधार बनाकर सारे देश में बवंडर खड़ा किया, लेकिन आम लोगों को इस बात के कोई प्रमाण नहीं मिल रहे थे। कल सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ वकील महेश जेठमलानी ने यह प्रमाण प्रस्तुत करके आश्चर्यचकित कर दिया कि कांग्रेस पार्टी ने बंगाल चुनाव के समय इस अखबार को 81 लाख रुपये दिए थे। इसके पहले कर्नाटक के चुनाव में भी बहुत बड़ी रकम दी गई थी। महेश जेठमलानी ने यह भी कहा है कि धीरे-धीरे लगातार इस अखबार को कांग्रेस पार्टी की तरफ से दिए गए पैसों की पोल खोली जाएगी। अब इंडियन एक्सप्रेस अखबार और उसके समाचार प्रकाशक, जिसने कांग्रेस पार्टी की योजना के अनुसार यह समाचार प्रकाशित किया है, उसे समाज के बीच आकर उत्तर देना चाहिए। इंडियन एक्सप्रेस सरीखा विश्वसनीय समाचार पत्र इस तरह के निचले स्तर के कार्य भी कर सकता है, यह संदेह अब पुख्ता होता जा रहा है। हम लोग अखबार के स्पष्टीकरण की प्रतीक्षा करेंगे। कांग्रेस पार्टी भी इस समाचार का खंडन कर सकती है। महेश जेठमलानी सारे प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए तैयार हैं।

24 छत्तीसगढ़ कांग्रेस की घटनाएँ और राजनीति में अपराधीकरण

मैं लंबे समय से लिखता रहा हूँ कि भारतीय राजनीति में अपराधियों का बहुत तेजी से प्रवेश हो रहा है। सिर्फ छत्तीसगढ़ कांग्रेस पार्टी की कल की दो घटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं। एक घटना में रायपुर शहर में कांग्रेस के एक बड़े पदाधिकारी को यह मैसेज आया कि वह 25 करोड़ रुपये फिरौती के रूप में दे। पुलिस ने जब गहराई से जाँच की, तो यह मैसेज भेजने वाला कांग्रेस के एक बड़े नेता का पुत्र ही निकला, जिसने एक विदेशी फोन नंबर से इस तरह

का मैसेज दिया था। विदित हो कि उक्त पुत्र का पिता भी इसी तरह के कार्य में जेल में है और वह पूरा परिवार कांग्रेस के बहुत बड़े नेताओं में शामिल है। एक दूसरी घटना में मनेंद्रगढ़ जिले में एक महिला ने किसी सीधे-सादे आदमी की राजनीतिक महत्वाकांक्षा का लाभ उठाकर उससे एक वर्ष में 80 लाख रुपये ठग लिए। वह व्यक्ति कांग्रेस पार्टी का जिला पदाधिकारी बनने की इच्छा रखता था। वह महिला मुसलमान होने के कारण, साथ ही महिला होने के कारण और फिर राजनीति से भी संबंध होने के कारण प्रभावशाली मानी जा रही थी। उस महिला के पास ये तीनों शक्तियाँ एक साथ थीं और यही कारण है कि वह उक्त सीधे-सादे व्यक्ति से 80 लाख रुपये ठगने में सफल हो गई। यह रुपया भी केवल इस आश्वासन पर लिया गया कि अगले दो वर्षों में कांग्रेस की सरकार बन जाएगी और उसे वर्तमान समय में कांग्रेस पार्टी की जिला इकाई में कोई प्रमुख पद मिल जाएगा। अब आप सोचिए कि विधायक और संसद के पद तो बिकते रहे हैं, लेकिन संगठन के पदों पर भी इस प्रकार अपराधी ब्लैकमेल कर रहे हैं। यह राजनीति में अपराधियों के बढ़ते प्रभाव का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

25 हत्या, गैर इरादतन हत्या और न्याय का सवाल

गुजरात में एक महिला ने आपसी विवाद में अपने पति को डंडे से चोट पहुँचाई और पति की मृत्यु हो गई। फिर महिला ने अपने पति की लाश को जलाने की कोशिश की और अधजली लाश को भूसे के ढेर में गाड़ दिया। 15-20 दिन बाद उसका बेटा विदेश से घर आया और अपनी माँ से पिता के बारे में पूछा, तो माँ ने अपने बेटे को सच्ची घटना बता दी। बेटे ने अपने चाचा को बताया। उन सबने मिलकर उस अधजली लाश को भूसे के ढेर से निकाला। यह बात गाँव में फैल गई और पुलिस को पता चला। पुलिस ने हत्या का मुकदमा कायम करके उस माँ को गिरफ्तार कर लिया। बेटा और परिवार असमंजस में हैं कि क्या करें। सब समझते हैं कि माँ ने गलती कर दी है, लेकिन कोई अपराध नहीं किया है। कानून कहता है कि माँ ने अपराध किया है।

क्या वास्तव में उस महिला ने अपराध किया है? मेरे विचार से नहीं। वास्तव में, यह हत्या का अपराध नहीं,

बल्कि गैर-इरादतन हत्या का अपराध बनता है। यदि परिवार और ग्राम सभा इस मामले को सामान्य दंड देकर सुलझा दें, तो पुलिस को इसमें आपत्ति क्यों होनी चाहिए? क्या पुलिस और न्यायालय इतने फुर्सत में हैं कि वे ऐसे मामलों को भी देखना आवश्यक मानें? क्या यह मामला इतना गंभीर है कि इसे हत्या का मुकदमा ही माना जाए? मैं अभी तक नहीं समझ पाया हूँ कि हर मामले में पुलिस और न्यायालय क्यों हस्तक्षेप करना चाहते हैं। यदि परिवार और समाज मिलकर किसी मामले को सुलझाने के लिए सहमत हैं, तो पुलिस और न्यायालय को दखल नहीं देना चाहिए।

26 राहुल गांधी और नरेंद्र मोदी: राजनीति की शतरंज

वैसे तो पूरी दुनिया में राजनीति को शतरंज का खेल माना जाता है, लेकिन भारत में तो राजनीति की चाल बहुत ही टेढ़ी-मेढ़ी होती है। भारत की जनता यह बात समझ नहीं पा रही है कि पिछले कुछ समय से मीडिया और सोशल मीडिया में राहुल गांधी को इतना अधिक आगे बढ़ाने के पीछे भारत की सरकार है अथवा राहुल गांधी की कांग्रेस पार्टी। मेरे विचार से राहुल गांधी एक शरीफ और नासमझ राजनेता हैं। उनमें न तो राजनीति की योग्यता है, न समझ। अपनी नासमझी में ही आज राहुल गांधी ने यह रहस्य खोलकर रख दिया कि आपस की चर्चा में नरेंद्र मोदी ने यह बात साफ की थी कि भविष्य के प्रधानमंत्री के लिए राहुल गांधी ही सबसे अधिक उपयुक्त हैं। मेरे विचार से नरेंद्र मोदी ने यह बात कहीं भी होगी और राहुल गांधी ने इस बात को पूरी तरह स्वीकार भी कर लिया है। अब नरेंद्र मोदी ने यह बात शतरंज के खिलाड़ी के रूप में कही अथवा किसी अन्य आधार पर, यह तो भारत की जनता तय करेगी। लेकिन राहुल गांधी इस बात को लेकर इतने अधिक उत्साहित हैं कि पूरा राजनीतिक गणित ही बदल गया है। अब तो राहुल गांधी अरविंद केजरीवाल को अपना दुश्मन मान रहे हैं। राहुल गांधी अभी तक बिना चुनाव जीते ही अपने को प्रधानमंत्री मानने लगे हैं। सोनिया जी भी मीडिया में राहुल की बढ़त से बहुत उत्साहित हैं। इसीलिए मैंने बहुत पहले ही लिखा था कि एक तरफ राहुल सरीखा अनाड़ी है और दूसरी तरफ नरेंद्र मोदी सरीखा खिलाड़ी।

सत्ता द्वारा स्थापित दृष्टिकोण से बाहर सोचने के लिए क्या हम तैयार हैं?

इस बुद्धि को सुलझाने का सबसे अच्छा रास्ता भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को समझना है। यदि हम उस समय की परिस्थितियों को देखें, तो एक महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने खड़ा होता है। ब्रिटिश संसद 1861 से ही बार-बार यह कह रही थी कि भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं का विकास

ज्ञानेन्द्र आर्य

किया जाएगा और अंततः भारत को स्वतंत्रता दी जाएगी। अनेक देशी रियासतों ने भी अपने-अपने तरीके से बदलती राजनीतिक परिस्थितियों के साथ इस प्रक्रिया में भागीदारी की। 1935 में ब्रिटिश सरकार द्वारा लाया गया भारत

शासन अधिनियम भी इसी संवैधानिक विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी था। कांग्रेस ने इसे केवल एक प्रशासनिक कानून के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसके माध्यम से भारत की भावी स्वतंत्र राजनीतिक व्यवस्था की दिशा पर भी बहस की। यदि 1935 तक यह स्पष्ट हो चुका था कि भारत को अंततः स्वतंत्र होना है, तो यहीं से सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा होता है:

गांधी जी सहित देश के तमाम क्रांतिकारी और राजनीतिक कार्यकर्ता आखिर किस बात के लिए संघर्ष कर रहे थे? इस प्रश्न का उत्तर केवल अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालना मान लेना शायद स्वतंत्रता आंदोलन की पूरी वैचारिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए पर्याप्त नहीं है।

चंद्रशेखर आजाद, राम प्रसाद बिस्मिल, सुभाष चंद्र बोस जैसे क्रांतिकारियों के अपने राजनीतिक संगठन और स्पष्ट राजनीतिक दृष्टिकोण थे। उस समय के राजनीतिक संगठनों की प्रकृति आज चुनाव लड़कर सत्ता प्राप्त करने वाले राजनीतिक दलों से कुछ अलग थी। उनके सामने केवल सत्ता प्राप्त करना ही उद्देश्य नहीं था, बल्कि अपनी-अपनी वैचारिकी और राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा को प्रासंगिक सिद्ध करना भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न था।

मोतीलाल नेहरू, बाल गंगाधर तिलक, पंडित मदन मोहन मालवीय आदि भी उस व्यापक राजनीतिक विमर्श का हिस्सा थे। सरल शब्दों में कहें तो उस दौर की राजनीति में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी था कि:

ब्रिटिश सत्ता के जाने के बाद देश की राजनीतिक व्यवस्था कैसी होगी और उसका संचालन किस दृष्टिकोण से होगा? सत्ताहस्तांतरण लेकिन इसके समानांतर एक दूसरा और कहीं अधिक गहरा प्रश्न भी मौजूद था।

गांधी और उनके समकालीन विचारकों का प्रश्न क्या था?

यदि गांधी, जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, आचार्य विनोबा भावे और ऐसे अन्य विचारकों को केवल सत्ता प्राप्ति की राजनीति के चश्मे से देखा जाए, तो उनके विचारों का एक बड़ा हिस्सा हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है।

महर्षि अरविंद जैसे विचारकों को भी केवल तत्कालीन राजनीतिक संघर्ष के संदर्भ में देखने से उनके चिंतन का व्यापक आयाम समझ में नहीं आता। इन लोगों के लिए मूल प्रश्न केवल यह नहीं था कि सत्ता अंग्रेजों से निकलकर किसके हाथ में जाएगी, बल्कि यह था कि सत्ता का स्वरूप क्या होगा और समाज तथा राज्य के बीच संबंध कैसा होगा।

यही वह प्रश्न है, जिसे समझ लेने पर हम स्वतंत्रता आंदोलन को केवल सत्ता परिवर्तन की कहानी के रूप में देखने से बाहर निकल सकते हैं।

इन प्रश्नों के उत्तर तलाशने का सबसे सरल रास्ता गांधी की वैचारिकी को समझना है। इसके दो प्रमुख कारण हैं। पहला, गांधी 1935 से 1947 के बीच की राजनीतिक

उथल-पुथल के केवल प्रत्यक्षदर्शी नहीं थे, बल्कि उसके प्रमुख राजनीतिक प्रभावकों में भी थे। दूसरा, गांधी के विचारों को समझने के लिए उनके स्वयं के लिखे हुए विपुल साहित्य के साथ-साथ उनके समकालीनों और बाद के अनेक विचारकों द्वारा किया गया विस्तृत कार्य उपलब्ध है। आदरणीय जयप्रकाश नारायण के घर पर अंकित उनका यह कथन इस दृष्टिकोण को समझने में काफी मदद करता है:

भारतीय स्वतंत्रता का आंदोलन एक सर्वोत्तम जन-आंदोलन था। यह राजनीति यानी राज्य की राजनीति नहीं थी, बल्कि लोकनीति यानी जनता की राजनीति थी।

जयप्रकाश नारायण : इस कथन को यदि स्वतंत्रता आंदोलन की व्यापक वैचारिक पृष्ठभूमि में रखकर देखें, तो एक महत्वपूर्ण अंतर दिखाई देता है।

सत्ता हस्तांतरण और सत्ता के स्वरूप में परिवर्तन, दोनों एक ही बात नहीं हैं।

गांधी सहित अनेक विचारकों के लिए प्रश्न केवल इतना नहीं था कि अंग्रेज भारत छोड़ें। प्रश्न यह भी था कि अंग्रेजों के जाने के बाद भारत में किस प्रकार की व्यवस्था स्थापित होगी। क्या सत्ता केवल शासक के चेहरे का परिवर्तन बनकर रह जाएगी, या शासन की प्रकृति ही बदलेगी?

यहीं गांधी की चिंता को "गोरे अंग्रेजों के हाथ से सत्ता लेकर काले अंग्रेजों के हाथ में सौंप देने" वाली उनकी प्रसिद्ध आशंका के संदर्भ में समझा जा सकता है। उनके लिए स्वतंत्रता का अर्थ केवल विदेशी शासन का अंत नहीं था। स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ था कि व्यक्ति, समाज और स्थानीय समुदाय अपनी स्वायत्त शक्ति को प्राप्त करें और राज्य समाज का स्वामी नहीं, बल्कि लोकजीवन की व्यवस्था का एक साधन बने।

इस दृष्टि से लोकतंत्र केवल चुनाव कराने की व्यवस्था नहीं रह जाता। लोकतंत्र का उद्देश्य यह होना चाहिए कि राज्य की राजनीति लोकनीति के अधीन रहे, न कि संगठित राजनीतिक सत्ता लोकनीति को अपने हितों के अनुसार प्रभावित करने लगे। इसलिए स्वतंत्रता संग्राम को समझने के लिए हमें केवल यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए कि: अंग्रेजों के जाने के बाद सत्ता किसे मिली?

बल्कि उससे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है: अंग्रेजों के जाने के बाद सत्ता किसके हाथ में जानी चाहिए थी, सत्ता का स्वरूप क्या होना चाहिए था और राज्य तथा लोक के बीच संबंध कैसा होना चाहिए था?

शायद यही वह बिंदु है, जहां से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को सत्ता के स्थापित दृष्टिकोण से बाहर निकलकर देखने की शुरुआत होती है।

इसे समझे बिना "लोकव्यवस्था जागरण अभियान" के उद्देश्यों को समझना संभव नहीं है।

भारतीयस्वतंत्रतासंग्राम, गांधीविचार, लोकस्वराज, लोकनीति, स्वतंत्रताका अर्थ

जीवन पथ

अब आगे...

भला ऐसा क्यों होना चाहिए? व्यक्ति, समाज के कर््यों को परिभाषित कर सकता है। लेकिन समाज उन कार्यों को निष्ठापूर्वक करेगा, इसे तो वह निश्चित नहीं कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन व्यक्तियों की ऐसी इच्छा रही है और होती है वे स्वयं को शासन करने की इच्छा से मुक्त नहीं कर सकते हैं। कमोवेश व्यक्ति की इसी इच्छा ने लोकतन्त्र को शासन पद्धति के रूप में स्थापित किया है।

यहाँ पर मैं विवेक से एक प्रश्न और करना चाहूँगा प्रोफेसर।खां, प्रोफेसर का वक्तव्य पूरा होने पर कहते हैं- व्यवस्था में ऐसे प्रावधान हैं, जिनके माध्यम से पथ भ्रष्ट लोगों को उनकी धृष्टता का दण्ड दिया जा सकता है। लेकिन व्यवस्था को चलाने वाले लोग ऐसा नहीं करते हैं तो भला व्यवस्था का क्या दोष है और क्यों उसमें परिवर्तन की आवश्यकता है?

आप ठीक कह रहे हैं अंकल। क्योंकि व्यक्ति-मात्र ही तमाम कार्य-कलाप का केन्द्र होता है। लेकिन यह तथ्य स्वस्फूर्त जवाबदेही के आदर्श को आचरण के रूप में स्वीकार करने वाले लोगों के लिए होता है। समाज में जवाबदेह व्यवस्था का प्रकल्प ऐसे ही स्वस्फूर्त लोगों की देन है। अब प्रकृति प्रदत्त मानव स्वभाव के अनुसार जो लोग स्वस्फूर्त जवाबदेही के आदर्श को अपने जीवन में स्वीकार नहीं करते हैं, बिना कोई अमर्यादित कार्य किए उन्हें भी तो चरित्रहीन नहीं कहा जा सकता है। मूलतः ऐसे लोगों को सामाजिक निष्क्रिय कहना ठीक रहेगा। यदि घटनावश ऐसे लोगों के हाथ में समाज की व्यवस्था चली जाती है तो तमाम आदर्शवाद नेपथ्य में चला जाता है।

लेकिन आज-कल तो व्यवस्था चलाने वाले तमाम लोग ही पथ भ्रष्ट दिखायी देते हैं!

यह अलग दृष्टिकोण है। यह तथ्य इस प्रकार और भी गम्भीर रूप धारण करता है कि जो कोई व्यक्ति समाज के राजनीतिक अधिष्ठान का हिस्सा बनता है, वह पथ भ्रष्ट सिद्ध हो जाता है। इसका कारण केवल स्वस्फूर्त आदर्शवाद के सिद्धान्त का त्याग नहीं है बल्कि यह शक्ति के केन्द्रीयकरण से उत्पन्न हुआ दोष है। सत्ता का यह मूलभूत दोष होता है कि वह जीवन की स्वच्छन्दता का दमन करती है। आपने कहा है कि आजकल व्यवस्था चलाने वाले तमाम लोग पथ भ्रष्ट हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे लोग सत्ता द्वारा प्राप्त शक्ति को इच्छाओं की पूर्ति का माध्यम मानते हैं इसलिए शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। तो इसका उपचार क्या होगा बेटे? इसे भी बताओ!

जी आदरणीय!वह, खां के प्रश्न को स्वीकार करते हुए

अपने सामने बैठे प्रोफेसर श्रीवास्तव को अत्यन्त आदरणीय नजरो से देखते हुए कहता है- अंकल, सत्ताधीशों द्वारा स्वस्फूर्त आदर्शवाद के सिद्धान्त का पालन इसका अंशकालिक उपचार हो सकता है लेकिन इसका मूल उपचार राजनीतिक व्यवस्था के समाज केन्द्रित होने में निहित है अर्थात् सत्ता का विभिन्न स्तरों पर अकेन्द्रीयकरण होना चाहिए। सत्ता कुछ व्यक्तियों के लिए उपयोगी नहीं होनी चाहिए बल्कि वह जन उपयोगी होनी चाहिए।

क्या व्यक्ति के चरित्र पर भी व्यवस्था का कोई प्रभाव पड़ता है विवेक?

इस विषय में मैं पुनः यह कहूँगा कि मेरी नजर में तो व्यवस्था का व्यक्ति के चरित्र पर न केवल कोई साधारण प्रभाव पड़ता है बल्कि दैनिक जीवन में व्यवस्था की मर्यादाएं व्यक्ति के चरित्र पर गहरा प्रभाव डालती हैं। अनुपयुक्त व्यवस्था व्यक्ति को विभिन्न प्रकार से पथ भ्रष्ट करती है। इसलिए व्यवस्था, सर्वदा उपयुक्त और यथार्थ के अनुरूप होनी चाहिए।

तुम्हारे अनुसार व्यवस्था की स्थापना का क्या सूत्र होना चाहिए?इस बार सिमी उससे प्रश्न करती है।

व्यवस्था समाज केन्द्रित होनी चाहिए।

और तब व्यक्ति अत्यन्त स्वच्छन्द हो जाएगा। उसका अस्तित्व राज्य से श्रेष्ठ हो जाएगा, क्योंकि तुमने पहले कहा है कि व्यक्ति को कभी-भी राज्य के प्रति उत्तरदायी होने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। तब राज्य का क्या महत्व रह जाएगा?

यदि व्यक्ति को राज्य का ही महत्व स्वीकार किए रखना है तो भला इसने लोकतन्त्रीय जीवन पद्धति को स्वीकार क्यों किया? ऐसा सोचने पर तो दुनिया में राजतन्त्रीय व्यवस्था ही उपयुक्त थी। व्यक्ति, राज्य की अपेक्षा स्वाधीन होना चाहिए यह लोकतन्त्र का आदर्श है और व्यक्ति की भौतिक स्वतन्त्रता सुनिश्चित रहे, यह व्यवस्था के ढाँचे का आदर्श है। जो व्यवस्था, जीवन में इन दोनों गुणों की स्थापना को सुनिश्चित न कर सके, वह व्यवस्था नहीं अपितु नियन्त्रण प्रणाली होती है। उसे तानाशाही कहना ठीक रहेगा।

तब ऐसे में राज्य क्या करेगा?

समाज के परिवेश में पनपने वाले समाज विरोधी तत्वों का उपचार करना, राज्य का कार्य है न कि समाज की स्वतन्त्रता को नियन्त्रित करना।

विवेक! तुम्हारी बातें सुनकर तो ऐसा लगता है कि अभी तक हम व्यवस्थाहीन अवस्था में ही जिये हैं या यूँ कहें कि हम नियन्त्रण प्रणाली के अधीन जिये हैं। यह कैसा रहस्य है? या तो तुम्हारा सोचना गलत है या फिर यह व्यवस्था गलत है। क्या कहना ठीक रहेगा?....सिमी इस बार विवेक

के बारे में कहे गए अपने तथ्य पर प्रोफेसर से टिप्पणी चाहती है। वह उसे स्पष्टीकरण देते हैं- यदि विवेक, समाज के सामने अपने तथ्य को सिद्ध करता है तो इसे ठीक कहा जा सकेगा अन्यथा नहीं, यद्यपि यह मेरे ही तत्वावधान में समाजशास्त्र का अनुसंधान कर रहा है, तब भी मैं इसका पक्ष नहीं ले सकता हूँ। मैं तो केवल इसका मार्गदर्शन कर सकता हूँ। अपने विचारों की पुष्टि इसी को करनी होगी। इसे समाज से अपने तथ्यों की प्रमाणिकता प्राप्त करनी होगी। इसी में इसका उद्देश्य निहित है।

और परीक्षा के समय आप भी इसे अकेला छोड़ देंगे अंकल!

यह तो भावनात्मक प्रश्न है बेटी! संघर्ष के समय ऐसी बातों का महत्व नहीं होता है। विवेक को यदि अपना अनुसंधान पूरा करना है तो मैं इसके लिए अपने दायित्व पूर्ति से न तो कुछ भी ज्यादा करूँगा और न कम। अपनी नियति इसे खुद तय करनी होगी।

लेकिन मैं विचार के कठोर रहस्य को आज तक नहीं समझ पायी हूँ अंकल। कहीं विवेक इस जटिल संघर्ष में किसी निरीह प्राणी की तरह उलझ कर न रह जाए!

प्रोफेसर, सिमी की टिप्पणी को स्वीकार कर चुप रह जाते हैं। वह बाद में कुछ सोचते हुए उससे कहते हैं- ऐसे किसी अवसर की प्रतीक्षा करना बेटी जब यथार्थ तुमसे तुम्हारी बोधता का प्रमाण मांगे तो मैं तुमसे विचार के रहस्य को स्पष्ट कर दूँगा।खैर हमे मूल विषय पर लोटना चाहिए और इस समय हमारा विषय, भारत में व्यवस्था की असफलता के कारणों का विश्लेषण करने पर केन्द्रित है। आप लोगों के यहाँ आने से पहले मैं इस विषय पर चिन्तन कर रहा था। बाद में पारिवारिक चर्चा के साथ विषय इस ओर मुड़ गया। अपने संविधान का विश्लेषण करते हुए मैंने यह तथ्य समझा है कि इसकी पठनीय भाषा में जितना आकर्षण और व्यक्ति-मात्र के प्रति हितबद्धता दिखायी देती है, वैसे गुण इसके लोक व्यवहार में नहीं है। समाज में भारी असन्तुलन है और अक्सर यह बात कही जाती है कि

व्यवस्था चलाने वाले लोगों के अवगुणों के कारण, व्यवस्था ठीक प्रकार से काम नहीं कर पाती है और वे सब अवगुण सम्पन्न लोग इसी व्यवस्था के प्रावधानों का सहारा लेकर सत्ता पर कब्जा बनाए रखते हैं।मेरे विचार से यह तर्क बड़ा दकियानूसी है कि भारत की व्यवस्था प्रणाली नहीं बल्कि इसे चलाने वाले लोग खराब हैं। क्या हम कभी अपने आप से यह प्रश्न भी करेंगे कि हम व्यवस्था को चलाने के लिए अच्छे लोग कहाँ से लाएँगे! क्योंकि मौजूदा व्यवस्था के अन्तर्गत हम जिस किसी भी व्यक्ति को योग्य मानकर व्यवस्था का भार उसे सौंपते हैं, वह नाकारा सिद्ध हो जाता है। मेरे विचार से मेरा यह कहना गलत सिद्ध नहीं हो पाएगा कि वर्तमान दौर में राजनेताओं के प्रति समाज की अविश्वसनीयता चरम पर है। समाज में राजनेता शब्द हिंकारत का आयीना बन चुका है। लेकिन समाज एक चक्र में बंधा हुआ है और इससे उबर नहीं पा रहा है। हमें दलगत राजनीति और राजनेताओं की व्यक्तिगत आलोचना छोड़कर समाज को दीन-हीन व्यवस्था के कुचक्र से उबारना होगा। यह समाज को राजनीति की ढाँचागत गुलामी से मुक्त करने का अनुसंधानात्मक कार्य है। हमें इसके अन्तर्गत ऐसे तथ्य खोजने होंगे जो व्यवस्था में निहित ऐसे अवसरों को ही नष्ट कर दें जो राजनेताओं और अन्य माध्यमों को समाज पर अपनी सत्ता स्थापित करने की छूट देते हैं। हमें वास्तव में व्यवस्था परिवर्तन करना होगा। लेकिन क्यों और कैसे? आखिर भारत के संविधान में क्या-क्या कमियाँ हैं जो हमें उसे परिवर्तित करना चाहिए। मेरा आदेश है कि विवेक यह अनुसंधान करके हमें बताए। यह अनुसंधान इसलिए भी आवश्यक है कि समाज को अपनी व्यवस्था के दोषों का पता चल सके और समाज स्वेच्छा से परिवर्तन को स्वीकार कर ले। यदि ऐसा किया जा सका तो निश्चित रूप से समाज एक विध्वंसक क्रान्ति से बच सकेगा। मूलतः हमें इस विषय को स्पष्ट करना होगा कि भारत में व्यवस्था परिवर्तन क्यों आवश्यक है?

स्वराज पर्व

8 अक्टूबर से 11 अक्टूबर 2026 लोक नायक जय प्रकाश नारायण स्मरण, स्वांद, सहभागिता एवं संकल्प का दिवस